Postal Reg. No. M.P./Bhopal/4-340/20-22
R.N.I.No. 51966/1989,ISSN 2455-2399
Date of Publication 15th January 2020
Date of posting 15th & 20th January 2020
Total Page 52

जनवरी 2020 • वर्ष 32 • अंक 01 • मूल्य ₹ 40

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

समुद्रों में आक्सीजन की कमी खतरे के संकेत

RNI No. 51966/1989
ISSN 2455-2399
www.electroniki.com
जनवरी 2020
वर्ष 32
अंक 1

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका
राष्ट्रीय राजभाषा शील्ड सम्मान, रामेश्वर गुरु पुरस्कार, भारतेन्दु पुरस्कार तथा सारस्वत सम्मान से सम्मानित

सलाहकार मण्डल
शरदचंद्र बेहार, डॉ. वि.दि. गर्दे, देवेन्द्र मेवाड़ी, डॉ. मनोज कुमार पटैरिया,
डॉ. संध्या चतुर्वेदी, प्रो. विजयकांत वर्मा, डॉ. रविप्रकाश दुबे,
डॉ. अशोक कुमार ग्वाल, डॉ. आर.एन.यादव, डॉ. सुनील कुमार श्रीवास्तव,
प्रो. राकेश कुमार पाण्डेय, प्रो. अमिताभ सक्सेना

संपादक
संतोष चौबे

कार्यकारी संपादक
विनीता चौबे

उप-संपादक
पुष्पा असिवाल

सह-संपादक
मोहन सगोरिया, रवीन्द्र जैन, मनीष श्रीवास्तव

संस्थागत सहयोग
गौरव शुक्ला, डॉ. डी.एस.राघव, डॉ. विजय सिंह, डॉ. सीतेश सिन्हा,
रवि चतुर्वेदी, डॉ. मुनीष गोविंद, डॉ. अनुराग सीठा, डॉ. सत्येन्द्र खरे, संतोष शुक्ला

राज्य प्रसार समन्वयक
शशिकांत वर्मा, लातूर सिंह वर्मा, लियाक़त अली खोखर, राजेश शुक्ला,
शलभ नेपालिया, अंबरीष कुमार, मुदस्सर कर, निशांत श्रीवास्तव,
रजत चतुर्वेदी, बिनीस कुमार, आबिद हुसैन भट्ट, दलजीत सिंह,
अजीत चतुर्वेदी, अमिताभ गांगुली, नरेन्द्र कुमार, इंद्रनील मुखर्जी, अनूप श्रीवास्तव,
शैलेष बंसल, सुशांत चक्रवर्ती, संदीप रंजन

क्षेत्रीय प्रसार समन्वयक
राजीव चौबे, जितेन्द्र पांडे, लुकमान मसूद, आर.के. भारद्वाज, प्रवीण तिवारी,
अरुण साहू, अभिषेक अवस्थी, विजय श्रीवास्तव, सूर्य प्रकाश तिवारी अमृतेष कुमार,
योगेश मिश्रा, मनीष खरे, सचिन जैन, रूपेश देवांगन, राहुल चतुर्वेदी, संतोष उपाध्याय,
असीम सरकार, भुवनेश्वर प्रसाद द्विवेदी, राजेश कुमार गुप्ता, दीपक पाटीदार,
भारत चतुर्वेदी, रक्षि मसूद, वेद प्रकाश परोहा, अमृतराज निगम
अशोक कुमार बारी, रंजीत कुमार साहू, गीतिका चतुर्वेदी, प्रशांत मैथली

समन्वयक प्रचार एवं विज्ञापन
राजेश पंडा

आवरण एवं डिजाइन
वंदना श्रीवास्तव, अमित सोनी

विज्ञान में महत्वपूर्ण बात नए तथ्यों को अधिक से अधिक प्राप्त करना नहीं होती बल्कि उनके बारे में चिंतन के नए तरीकों की खोज करनी होती है।

- विलियम लॉरेंस ब्रैग

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए 306

इलेक्ट्रॉनिक्स, कम्प्यूटर विज्ञान एवं नई तकनीक की पत्रिका

क्रम

आरंभ
कैलेंडर की कहानी
● देवेन्द्र मेवाड़ी /05

विज्ञान सामयिक
समुद्रों में आक्सीजन की कमी : खतरे के संकेत
● विजन कुमार पांडेय /09

अंतरिक्ष अन्वेषण के कीर्तिमान
● कालीशंकर /13

जैव अनुसंधान एवं नैदानिकी में सूचना प्रौद्योगिकी
● डॉ.दिनेश मणि /17

युद्ध में गेम चेंजर साबित हो सकती है ब्रह्मोस
● शशांक द्विवेदी /20

संजीवनी बूटी के खुलते रहस्य
● प्रमोद भार्गव /22

फेसबुक : सीरत पर सूरत की फतह का जश्न
● कुणाल सिंह /25

विज्ञान हस्तक्षेप
नकारात्मक कार्बन ऊर्जा
आवश्यकता और वर्तमान परिदृश्य
● प्रज्ञा गौतम /28

चिकित्सा क्षेत्र में नैनो प्रौद्योगिकी
● मणि प्रभा /31

विज्ञान कथा
लैक्टो बैसीलस
● कुमार सुरेश /35

कॅरियर
कंट्रोल सिस्टम इंजीनियरिंग
● संजय गोस्वामी / 38

विज्ञान इस माह
उपछाया चंद्र ग्रहण
● इरफॉन ह्यूमन /42

रपट
हिन्दी का वैश्विक विमर्श
● डॉ.कृष्ण कुमार मिश्र /47

पत्र व्यवहार का पता

इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए

आईसेक्ट लिमिटेड, स्कोप कैम्पस, एन.एच.–12, होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल–462047

फोन : 0755-2700466 (डेस्क), 2700400 (रिसेप्शन)

e-mail : electronikiaisect@gmail.com, website : www.electroniki.com वार्षिक शुल्क : 480/- प्रति अंक : 40/-

'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार संबंधित लेखक के हैं। उनसे संपादक की सहमति होना आवश्यक नहीं है।

सभी विवादों का निबटारा भोपाल अदालत में किया जायेगा।

स्वामी, आईसेक्ट लिमिटेड के लिये प्रकाशक व मुद्रक सिद्धार्थ चतुर्वेदी द्वारा आईसेक्ट पब्लिकेशन्स, 25 ए, प्रेस कॉम्प्लेक्स, जोन-1, एम.पी.नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित व आईसेक्ट लिमिटेड, स्कोप कैम्पस एन.एच.-12 होशंगाबाद रोड, मिसरोद, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित। संपादक- संतोष चौबे।

कलैंडर की कहानी

देवेन्द्र मेवाड़ी

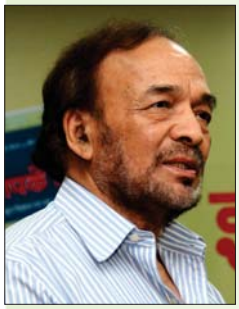

देवेंद्र मेवाड़ी भारत के एक प्रतिष्ठित और लोकप्रिय विज्ञान लेखक हैं। उनके लिए विज्ञान लेखन एक मिशन है। विगत पचास वर्षों से भी अधिक समय से वह हिंदी में लोकप्रिय विज्ञान लेखन करते आ रहे हैं। वैज्ञानिक विषयों पर देश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में नियमित लेखन करते हुए मेवाड़ी जी के अभी तक 1500 से अधिक लेख तथा अठारह मौलिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुके हैं। विज्ञान लोकप्रियकरण का एक मुख्य उद्देश्य समाज से अंधविश्वास और रुढ़ियों का उन्मूलन करना है जिसे देवेन्द्र मेवाड़ी अपने विज्ञान लेखन और विज्ञान संचार से पूरा कर रहे हैं। वे दिल्ली में रहते हैं और विज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने के लिए वे देशभर में भ्रमण करते हैं। विद्यार्थियों के बीच वे बहुत लोकप्रिय विज्ञान लेखक हैं।

तारीखों का हिसाब रखने की कला यानी कलैंडर की शुरूआत कब हुई, इस बारे में दावे के साथ कोई कुछ नहीं कह सकता। लेकिन हां, सुदूर अतीत में वन-बीहड़ों और गुफाओं में रहने वाला आदि मानव यह देख कर जरूर हैरान हुआ होगा कि, हर रोज सूरज उगता है और शाम को अस्त हो जाता है, चाँद निकलता है और डूब जाता है। कभी भीषण गर्मी पड़ती है, कभी रिमझिम वर्षा होने लगती है, और फिर, कभी सिहरा देने वाली सर्द हवाएं चलने लगती हो। उसने जरूर सोचा होगा कि समय-समय पर ऐसा क्यों होता है? क्यों ऋतुएं आती हैं, जाती हैं?

फिर जब उसने खेती शुरू की, अपने खेतों में वह बीज बोने लगा तो उसने देखा होगा कि फसल उगती है, बढ़ती है और पक जाती है। वह फसल की कटाई कर लेता होगा। लेकिन, समय फिर लौट आया होगा, उसने फिर बीज बोए होंगे। इस तरह फसल की बोआई, निराई-गुड़ाई और कटाई का सिलसिला शुरू हो गया होगा। तब शायद उसने पहली बार इस बात का हिसाब लगाना शुरू किया होगा कि फसल की बोआई के कितने समय बाद फिर से नई फसल के बीज बोने हैं। इस तरह शायद पहली बार पूरे 'वर्ष' का हिसाब लगा होगा। बहरहाल, विश्व की अनेक सभ्यताओं ने अपने-अपने ढंग से समय का हिसाब लगाया।

अनुमान है कि वर्ष का पहला हिसाब सबसे पहले मिस्र के निवासियों ने लगाया। हर साल जब नील नदी में बाढ़ आती थी तो उसके बाद वे फसलों की बोआई करते थे। बाढ़ आने के बाद जब नील नदी में दुबारा बाढ़ आती थी तो उन्होंने देखा कि उस दौरान चाँद 12 बार उगता था। यानी, 12 चंद्र-माहों के बाद बाढ़ आती थी और तब वे फसल की बोआई करते थे। मिस्र के धर्मगुरूओं ने देखा कि जब बाढ़ आती है तो आसमान में एक तेज चमकदार तारा भी दिखाई देने लगता है। उन्होंने गणना की तो पता लगा कि 365 दिन बाद फिर ऐसा ही होता है। फिर तारा चमकने लगता है। यह 6,000 वर्ष पुरानी बात है। मिस्र के निवासियों ने 365 दिन के वर्ष को 30 दिन के 12 महीनों में बांट दिया। वर्ष के अंत में पांच दिन बच गए। इस तरह मिस्र के निवासियों ने कलैंडर का आविष्कार कर लिया।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो जुलियन और ग्रेगोरीय कलैंडर महत्वपूर्ण माने जाते हो। जुलियन कलैंडर रोम के शासक जुलियस सीजर ने बनवाया। आगे चल कर पोप ग्रेगोरी तेरहवें ने इसमें सुधार करके ग्रेगोरीय कलैंडर शुरू किया। ईस्वी पूर्व 45 से पहले तक रोम साम्राज्य में रोमन कलैंडर प्रचलित था। वह 1 मार्च से प्रारंभ होता था। वर्ष में केवल 10 माह होते थेः मार्टिअस, एप्रिलिस, मेअस, जूनिअस, क्विंटिलिस, सैक्सिटिलिस, सेप्टेंबर, अक्टूबर, नवंबर तथा दिसंबर। इन 10 महीनों के वर्ष में केवल 304 दिन होते थे। इसके बाद कड़ाके की सर्दी पड़ती थी और तब कोई विशेष काम नहीं होता था। लिहाजा 61 दिन का समय छोड़ दिया जाता था। माना जाता है कि रोम के सम्राट 'नुमा पांपिलिअस' ने दिसम्बर और मार्च महीनों के बीच फरवरी और जनवरी माह जोड़े। इससे वर्ष में दिनों की संख्या 354 या 355 हो गई। हर दो वर्ष बाद 22 या 23 दिनों का अधिमास

धार्मिक कैलेंडर Tzolkin

चायनीज कैलेंडर

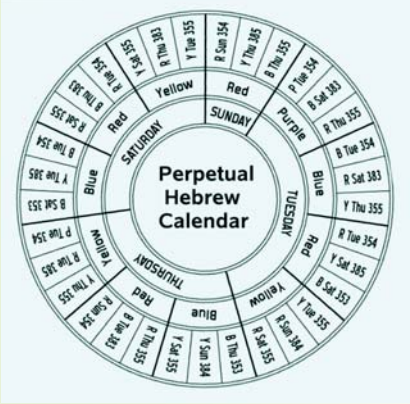

हिब्रू कैलेंडर

जोड़ कर 366 दिन का वर्ष मान लिया जाता था। इसमें सुधार किए जाते रहे। बाद में कलैंडर की गणनाएं चंद्रमा के बजाय दिनों के आधार पर की जाने लगीं। पृथ्वी द्वारा सूर्य की परिक्रमा की गणना के आधार पर वर्ष में दिनों की संख्या 365.25 हो गई। इस सवा अर्थात् एक चौथाई दिन से गणना में बड़ा भ्रम पैदा होने लगा।

तब रोम के शासक जुलियस सीजर ने रोमन कलैंडर में सुधार किया। ईस्वी पूर्व 44 में क्विंटिलिस माह का नाम बदल कर जूलियस सीजर के सम्मान में 'जुलाई' रख दिया गया। जुलियस सीजर ने कलैंडर को सुधारने में मिस्र के खगोलविद सोसिजेनीज की मदद ली। वर्ष 1 जनवरी से शुरू किया गया। वर्ष का आरंभ बहुत पिछड़ चुका था। इसलिए उसने आदेश दिया कि ईस्वी पूर्व 46 में 67 दिन जोड़ दिए जाएं। इस तरह ई.पू. 46 में कुल 445 दिन हो गए। इससे भ्रांति बढ़ गई। इसलिए 445 दिनों के उस वर्ष को 'भ्रांति वर्ष' कहा जाता है। उसने यह भी आदेश दिया कि उसके बाद हर चौथे वर्ष को छोड़ कर प्रत्येक वर्ष 365 दिन का होगा। चौथा वर्ष लीप वर्ष होगा और उसमें 366 दिन होंगे। फरवरी को छोड़ कर प्रत्येक माह में 31 या 30 दिन होंगे। फरवरी में 28 दिन होंगे लेकिन लीप वर्ष में फरवरी में 29 दिन माने जाएंगे। अनुमान है कि 8 ईस्वी पूर्व में सम्राट ऑगस्टस के नाम पर सेक्सटिलिस माह का नाम 'अगस्त' रख दिया गया।

लेकिन जूलियन कलैंडर के हिसाब से ईस्टर का त्यौहार और अन्य धार्मिक तिथियाँ संबंधित ऋतुओं में सही समय पर नहीं आती थीं। कलैंडर में अतिरिक्त दिन जमा हो गए थे। पोप ग्रेगोरी 1572 से 1585 तक तेरहवें पोप रहे। सन् 1582 तक वसंत विशुव यानी वर्नल इक्विनॉक्स 10 दिन पिछड़ चुका था। पोप ग्रेगोरी तेरहवें ने जूलियन कलैंडर की 10 दिनों की त्रुटि को सुधारने के लिए उस वर्ष 5 अक्टूबर की तिथि को 15 अक्टूबर मानने का आदेश दिया। इस तरह जूलियन कलैंडर में से 10 दिन घटा दिए गए। लीप वर्ष शताब्दी के अंत में रखा गया बशर्ते वह 400 की संख्या से विभाजित होता हो। इसीलिए 1700, 1800 और 1900 लीप वर्ष नहीं थे जबकि वर्ष 2000 लीप वर्ष था। इस संशोधन से ग्रेगोरीय कलैंडर की शुरूआत हुई जिसे आज विश्व के अधिकांश देशों में अपनाया जा रहा है।

इसके बावजूद विश्व के कई देश समय की गणना के लिए अभी भी अपने परंपरागत पंचांग या कलैंडर का उपयोग कर रहे हैं। चीनी, इस्लामी या हिजरी और यहूदी कलैंडर इसके उदाहरण हैं।

लेकिन पहले, आइए भारतीय पंचांग यानी कलैंडर की बात कर लें। हमारे देश में लगभग 5,000 वर्ष पहले वैदिक काल में समय की गणना का काम शुरू हो गया था। उन दिनों इस बात का ज्ञान हो चुका था कि चंद्र-वर्ष में 360 से कुछ कम दिन होते हैं क्योंकि एक चंद्र-मास में ठीक 30 दिन नहीं होते। सूर्योदय से सूर्योदय तक के काल को 'सावन-दिन' माना गया। तब सावन-मास और चांद्र मास का भी ज्ञान प्राप्त हो चुका था। बाद में नक्षत्र और फिर 'तिथि' का ज्ञान हुआ। अनुमान है कि शक संवत् से लगभग 1400 वर्ष पूर्व तक तिथि और नक्षत्र, समय के इन दो अंगों का ही ज्ञान था। उसके बाद करण, योग और वार का ज्ञान प्राप्त हुआ। इस तरह तिथि, नक्षत्र, वार, करण और योग, समय के इन पांच अंगों से 'पंचांग' यानी कलैंडर का विकास हुआ।

क्षेत्रीय आवश्यकताओं और धार्मिक तिथियों की गणना के लिए देश के विभिन्न प्रांतों में कई प्रकार के पंचांग बनाए गए जिनमें से अनेक पंचांग आज भी प्रचलित हैं। लेकिन, प्रशासनिक तथा नागरिक उद्देश्य के लिए संशोधित और मानक भारतीय राष्ट्रीय कलैंडर का प्रयोग किया जाता है।

हमारा राष्ट्रीय कलैंडर प्रोफेसर मेघनाद साहा जैसे समर्पित वैज्ञानिक के सतत प्रयासों का फल है। कलैंडर सुधार का सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विश्वासों पर सीधा प्रभाव पड़ने का खतरा मोल लेते हुए भी उन्होंने कलैंडर में वैज्ञानिक सुधार का बीड़ा उठाया और हमारे कलैंडर को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया।

प्रोफेसर मेघनाद साहा ने भारतीय पंचांगों और कलैंडर सुधार की आवश्यकता पर 'जर्नल ऑफ रॉयल एस्ट्रोनामिकल सोसाइटी', 'जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी' और 'साइंस एंड कल्चर' जैसी प्रसिद्ध विज्ञान पत्रिकाओं में लेख लिख कर इस विषय की ओर सरकार और आम लोगों का ध्यान आकर्षित

किया। कलैंडर से संबंधित उनके कुछ लेख इस प्रकार थेः 'कलैंडर (पंचांग) सुधार की आवश्यकता', 'कालांतर में संशोधित कलैंडर तथा ग्रेगोरीय कलैंडर', 'भारतीय कलैंडर का सुधार', 'विश्व कलैंडर योजना'। ये सभी लेख 'साइंस एंड कल्चर में प्रकाशित हुए। 'प्राचीन एवं मध्ययुगीन भारत में काल निर्धारण की विभिन्न विधियां तथा शक संवत् की उत्पत्ति' जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी में छपा। उन्होंने एशियाटिक सोसाइटी में 'शक संवत् की शुरुआत' पर व्याख्यान दिया। इन प्रयासों के परिणाम स्वरूप 1952 में वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद् ने एक कलैंडर सुधार समिति गठित की। समिति को देश के विभिन्न प्रांतों में प्रचलित पंचांगों का अध्ययन करके सरकार को सटीक वैज्ञानिक सुझाव देने की जिम्मेदारी सौंपी गई ताकि पूरे देश में एक समान नागरिक कलैंडर लागू किया जा सके। प्रो. मेघनाद साहा इस कलैंडर सुधार समिति के अध्यक्ष नियुक्त किए गए। समिति के सदस्य थेः ए.सी.बनर्जी, के.के.दतरी, जे.एस.करंडीकर, गोरख प्रसाद, आर.वी.वैद्य तथा एन.सी. लाहिड़ी।

पंचांगों में सबसे प्रमुख त्रुटि थी वर्ष की लंबाई। पंचांग प्राचीन 'सूर्य सिद्धांत' पर आधारित होने के कारण वर्ष की लंबाई 365.258756 दिन की होती है। वर्ष की यह लंबाई वैज्ञानिक गणना पर आधारित सौर वर्ष से .01656 दिन अधिक है। प्राचीन सिद्धांत अपनाने के कारण ईस्वी सन् 500 से वर्ष 23.2 दिन आगे बढ़ चुका है। भारतीय सौर वर्ष 'वसंत विषुव' औसतन 21 मार्च के अगले दिन मतलब 22 मार्च से शुरु होने के बजाय 13 या 14 अप्रैल से शुरु होता है। दूसरी ओर, जैसे कि पहले बताया गया है, यूरोप में जूलियस सीजर द्वारा शुरू किए गए 'जुलियन कलैंडर' में भी वर्ष की लंबाई 365.25 दिन निर्धारित की गई थी जिसके कारण 1582 ईस्वी आते-आते 10 दिन की त्रुटि हो चुकी थी। तब पोप ग्रेगरी तेरहवें ने कलैंडर सुधार के लिए आदेश दे दिया कि उस वर्ष 5 अक्टूबर को 15 अक्टूबर घोषित कर दिया जाए। लीप वर्ष भी स्वीकार कर लिया गया। लेकिन, भारत में सदियों से पंचांग यानी कलैंडर में इस प्रकार का कोई संशोधन नहीं हुआ था।

उन्होंने विश्व कलैंडर योजना का भी सुझाव दिया और 1954 में जेनेवा में आयोजित यूनेस्को के 18वें अधिवेशन में 'विश्व कलैंडर' सुधार के लिए प्रस्ताव भेजा। कलैंडर सुधार समिति ने 1955 में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। समिति ने प्रशासनिक तथा नागरिक कलैंडर के लिए महत्वपूर्ण संस्तुतियां कीं। इन संस्तुतियों के अनुसार राष्ट्रीय कलैंडर में शक संवत् का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसकी गणनाएं शक संवत् से की जाती हैं। शक संवत् की प्रथम तिथि ईस्वी सन् 79 के वसंत विशुव से प्रारंभ होती है। हमारे राष्ट्रीय कलैंडर में शक संवत् 1879 (अठारह सौ उनासी) के चैत्र मास की प्रथम तिथि को आधार माना गया है जो ग्रेगोरीय कलैंडर की गणना के अनुसार 22 मार्च ईस्वी सन् 1957 है। यानी, हमारा संशोधित राष्ट्रीय कलैंडर 22 मार्च 1957 से शुरू होता है।

समिति ने सुझाव दिया कि वर्ष में 365 दिन तथा लीप वर्ष में 366 दिन होंगे। लीप वर्ष की परिभाषा देते हुए सुझाव दिया गया कि शक संवत् में 78 जोड़ने पर जो संख्या मिले वह अगर 4 से विभाजित हो जाए तो वह लीप वर्ष होगा। लेकिन, अगर वर्ष 100 का गुणज तो है लेकिन 400 का गुणज नहीं है तो वह लीप वर्ष नहीं माना जाएगा। राष्ट्रीय परंपरागत भारतीय मास 12 हैंः चैत्र, वैसाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्र, आश्विन, कार्तिक, अग्रहायण, पौष, माघ और फाल्गुन। समिति ने यह भी संस्तुति की कि वर्ष का प्रारंभ वसंत विषुव के अगले दिन से होना चाहिए। कलैंडर में चैत्र मास वर्ष का प्रथम मास होगा। चैत्र से भाद्र तक प्रत्येक मास में 31 दिन और आश्विन से फाल्गुन तक प्रत्येक मास में 30 दिन होंगे। लीप वर्ष में, चैत्र मास में 31 दिन होंगे अन्यथा सामान्य वर्षों में 30 दिन ही रहेंगे। लीप वर्ष में चैत्र मास की प्रथम तिथि 22 मार्च के बजाय 21 मार्च होगी। समिति ने कहा कि जो उत्सव और अन्य महत्वपूर्ण तिथियां 1400 वर्ष पहले जिन ऋतुओं में मनाई जाती थीं, वे 23 दिन पीछे हट चुकी हैं। फिर भी धार्मिक उत्सवों की तिथियां परंपरागत पंचांगों से ही तय की जा सकती हैं। समिति ने धार्मिक पंचांगों के लिए भी दिशा निर्देश दिए। ये पंचांग सूर्य और चंद्रमा की गतियों की गणनाओं के आधार पर तैयार किए जाते हैं। भारतीय मौसम विज्ञान विभाग प्रति वर्ष भारतीय खगोल पंचांग प्रकाशित करता है। छुट्टियों की तिथियों की गणना इसी के आधार पर की जाती है।

हमारे राष्ट्रीय कलैंडर के लीप वर्ष विश्व भर में प्रचलित ग्रेगोरी कलैंडर के समान हैं। ग्रेगोरीय कलैंडर में 21 मार्च की तिथि वसंत विशुव यानी वर्नल इक्विनॉक्स मानी गई है।

सूर्य कैलेंडर

पंचांगों में सबसे प्रमुख त्रुटि थी वर्ष की लंबाई। पंचांग प्राचीन 'सूर्य सिद्धांत' पर आधारित होने के कारण वर्ष की लंबाई 365.258756 दिन की होती है। वर्ष की यह लंबाई वैज्ञानिक गणना पर आधारित सौर वर्ष से .01656 दिन अधिक है।

जूलियन कैलेंडर

चीनी कलैंडर सौर-चांद्र कलैंडर है जिसके वर्ष सायन वर्ष और माह संयुति से साम्य रखते हैं। सामान्य वर्ष में 12 और लीप वर्ष में 13 माह होते हैं। सामान्य वर्ष में 353, 354 या 355 दिन होते हैं। लीप वर्ष 383, 384 या 385 दिन का होता है। नया महीना ठीक आमावस्या से शुरू होता है, उसके अगले दिन चांद देखने से नहीं। उसी दिन महीने की पहली तारीख मानी जाती है। चीनी कलैंडर की एक विशेषता यह है कि उसमें वर्षों के विशेष नाम होते हैं। उनका चक्र 60 वर्ष में पूरा होता है और वर्षों की पुनरावृत्ति होती है। वर्ष के नाम के दो भाग होते हैं-एक दिव्य और दूसरा पार्थिव।

देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरु ने कलैंडर सुधार समिति की रिपोर्ट की प्रस्तावना में लिखा था, "हमने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है। यह वांछनीय होगा कि हमारे नागरिक सामाजिक और अन्य कार्यों में काम आने वाले कलैंडर में कुछ समानता हो और इस समस्या को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लिया जाना चाहिए।"

हम चीनी, इस्लामी और यहूदी कलैंडरों की बात कर रहे थे। चीन में नागरिक उद्देश्य के लिए ग्रेगोरीय, लेकिन उत्सव तथा त्योहारों की तिथियों की गणना के लिए विशेष परंपरागत चीनी कलैंडर का उपयोग किया जाता है। विश्व भर में चीनी मूल के लोग इसको काम में लाते हैं। यों, चीन में कलैंडर प्राचीनकाल से प्रचलित है। कहते हैं, सम्राट हुआंग्दी ने ई.पू. 2,637 में कलैंडर का आविष्कार किया था। चीनी कलैंडर सूर्य के रेखांश और चंद्र-कलाओं के वास्तविक खगोलीय प्रेक्षणों पर आधारित है। यानी, यह वैज्ञानिक आधार पर बनाया जाता है।

चीनी कलैंडर सौर-चंद्र कलैंडर है जिसके वर्ष सायन वर्ष और माह संयुति से साम्य रखते हैं। सामान्य वर्ष में 12 और लीप वर्ष में 13 माह होते हैं। सामान्य वर्ष में 353, 354 या 355 दिन होते हैं। लीप वर्ष 383,384 या 385 दिन का होता है। नया महीना ठीक आमावस्या से शुरू होता है, उसके अगले दिन चांद देखने से नहीं। उसी दिन महीने की पहली तारीख मानी जाती है।

चीनी कलैंडर की एक विशेषता यह है कि उसमें वर्षों के विशेष नाम होते हैं। उनका चक्र 60 वर्ष में पूरा होता है और वर्षों की पुनरावृत्ति होती है। वर्ष के नाम के दो भाग होते हैं-एक दिव्य और दूसरा पार्थिव। चीनी कलैंडर के दिव्य नाम 10 हैं जिनका क्रम इस प्रकार है: जिया, ई, बिंग, डिंग, वू, जी, गेंग, झिन, रेन और गुई। पार्थिव नाम राशि चक्र के 12 जानवरों के नामों पर आधारित हैं, जैसे जी (चूहा), चोऊ (बैल), यिन (बाघ), माओ (खरगोश), चेन (ड्रैगन), सि (सांप), वू (घोड़ा), वीई (भेड़), शेन (बंदर), यू (मुर्गा), झू (कुत्ता) और हाइ (सुअर)। साठ वर्ष के चक्र में पहला वर्ष दिव्य तथा पार्थिव सूची के प्रथम नाम के अनुसार जिया-जी, दूसरा ई-चोऊ, तीसरा बिंग-यिन होता है। दसवां वर्ष गुई-यू होता है लेकिन उसके बाद ग्यारहवां वर्ष फिर प्रथम दिव्य नाम के साथ जिया-झू और 12 वां वर्ष ई-हाइ होता है। 13 वें वर्ष का नाम बिंग-जी होता है। इसी क्रम में 60 वां वर्ष गुई-हाइ कहलाता है। अनुमान है कि चीन में यह वर्ष-चक्र 2637 ई.पू. में इस कलैंडर के आविष्कार से ही चला आ रहा है।

हिजरी या इस्लामी कलैंडर की शुरूआत 16 जुलाई 622 ई. से मानी जाती है। यह पूरी तरह चंद्रमा पर आधारित है। इसमें भी 12 माह होते हैं। चंद्र मास 29.53 दिन का होता है। इसलिए 12 माह में कुल 354.36 दिन होते हैं। यही कारण है कि यह ग्रेगोरीय कलैंडर से लगभग 11 दिन छोटा होता है। ग्रेगोरीय कलैंडर में 16 जुलाई 622 से अब तक 1386 वर्ष बीत चुके हो जबकि हिजरी कलैंडर में 1428 वर्ष बीत चुके हैं। मगर, अनुमान है कि ग्रेगोरीय कलैंडर की ई.सन् 20,874 के पांचवें यानी मई माह की पहली तारीख को हिजरी कलैंडर के वर्ष 20,874 के पांचवें माह की भी पहली तारीख होगी।

सऊदी अरब तथा खाड़ी के कुछ अन्य देशों में सरकारी कलैंडर यही है कई मुस्लिम देश प्रशासनिक कार्यों के लिए तो ग्रेगोरीय कलैंडर का उपयोग करते हैं, लेकिन धार्मिक तिथियों के लिए हिजरी कलैंडर को काम में लाते हैं।

हिजरी कलैंडर का प्रत्येक माह अमावस्या के बाद आंख से बाल-चंद्र दिखाई देने पर शुरू होता है। कई बार धुंध या बादलों आदि के कारण बाल-चंद्र नहीं दिखाई देता। लेकिन, नया महीना बाल-चंद्र दिखाई देने के बाद ही शुरू होता है। इसलिए नए महीने की ठीक-ठीक तारीख बताना कठिन होता है। यही कारण है कि पहले से तय तारीखों के साथ हिजरी कलैंडर छापना मुश्किल है। फिर भी काम चलाने के लिए ये कलैंडर छापे जाते हैं।

यहूदी कलैंडर की शुरूआत लगभग ई. 359 में हुई। धार्मिक उत्सवों तथा तिथियों के लिए विश्व भर में यहूदी लोग इसका उपयोग करते हैं। इजराइल का सरकारी कलैंडर यही है। यह सूर्य और चंद्रमा दोनों ही गतियों पर आधारित है। सामान्य वर्ष में 12 माह और अधिवर्ष में 13 माह होते हैं। प्रत्येक माह औसतन अमावस्या को शुरू होता है। सामान्य वर्ष में 353, 354 या 355 दिन और लीप वर्ष में 383, 384 या 385 दिन होते हैं। बारह माह में 11 दिन कम होने के कारण लगभग हर तीन वर्ष बाद एक अधिमास या लीप का महीना जोड़ दिया जाता है। इस कारण कलैंडर ऋतुओं के अनुसार ही चलता रहता है। यह करना आसान काम नहीं था। प्राचीनकाल में इजराइल में धार्मिक नेता हर साल वसंत बीत जाने पर देखते थे कि सड़कें तीर्थयात्रियों के चलने लायक सूख चुकी हैं कि नहीं। अगर नहीं तो वे एक माह का समय आगे बढ़ा देते थे!

तो, इस तरह विश्व की विभिन्न सभ्यताओं के लोगों ने जीवन में समय की पाबंदी के लिए समय को कलैंडर में बांधा। समय के साथ-साथ वैज्ञानिक गणनाओं के आधार पर कलैंडर में सुधार होता रहा और आज विश्व के अधिकांश देशों में एक रूपता के लिए ग्रेगोरीय कलैंडर का उपयोग किया जा रहा है।

dmewari@yahoo.com

समुद्रों में आक्सीजन की कमी
खतरे के संकेत

विजन कुमार पांडेय

विजन कुमार पाण्डेय लोकप्रिय विज्ञान लेखक हैं और शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े हैं। उन्होंने विगत तीन दशकों में तीन सौ से अधिक लेख लिखे हैं। 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिए' में वे नियमित रूप से प्रकाशित होते रहे हैं। देश के प्रतिष्ठित विज्ञान पत्रिकाओं में आपकी रचनाओं की कई-कई पाठक हैं जो आपके काम को रेखांकित करते रहते हैं।

हमारा सौरमंडल रहस्यों से भरा हुआ है। इसमें अनेक ग्रहों के अपने उपग्रह हैं। जिन्हें हम चाँद कहते हैं। सौरमंडल में बृहस्पति के पास सबसे ज्यादा 79 चाँद हैं। इसके बाद 62 चंद्रमा वाले शनि की बारी आती है। वहीं बुध और शुक्र के पास कोई चंद्रमा नहीं है। धरती का केवल एक चाँद है जिसका हमारे ग्रह के मौसम से गहरा संबंध है। क्या चंद्रमा मौसम को प्रभावित करता है? ऐसे प्रश्न अक्सर आपके दिमाग में आता होगा। यह बात सच है कि चंद्रमा हमारे मौसमों को प्रभावित करता है। चंद्रमा के गुरुत्वाकर्षण बल से ही समुद्र में ज्वार-भाटा उठता है। ज्वार भाटे से पानी में बड़ी हलचल होती है जिससे हीट बफर बनता है और मौसम प्रभावित होता है। माना जाता है कि अगर ज्वार ना उठें तो पृथ्वी तीन गुना तेजी से घूमेगी। जिसके गंभीर परिणाम होंगे। मसलन वातावरण में विक्षोभ बढ़ेगा। इससे तूफान बढ़ेंगे जिनकी रफ्तार 500 किलोमीटर प्रति घंटा हो सकती है और भारी तबाही होगी। गर्मियों में तापमान 60 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ जाएगा। वहीं सर्दियों में पारा-50 डिग्री तक गिर सकता है।

चंद्रमा सिर्फ पृथ्वी के घूमने के क्रम को ही नहीं प्रभावित करता, बल्कि यह उसकी कक्षा में अक्षों को भी स्थिरता देता है। साथ ही चंद्रमा हमारी पृथ्वी के मौसम को स्थिर भी बनाता है। इसीलिए भूमध्यरेखा वाले इलाकों में पूरे साल एक जैसा मौसम रहता है। इन दिनों सूरज खूब चमकता है। पूरे साल यहां गर्मी रहती है और रोज बारिश होती है। बहुत से जीवों के लिए यह इलाका जन्नत जैसा है। वहीं पृथ्वी के ध्रुवों पर सर्दियों के महीनों में रातें खूब अंधेरी होती हैं और तापमान इतना कम कि इंसानों के लिए रहना मुश्किल हो जाता है। चंद्रमा के बिना तो पृथ्वी का घूमना भी दूभर हो जाएगा। वह अपनी धूरी पर लड़खड़ाने लगेगी। इससे ना सिर्फ दुनिया के मौसम पर, बल्कि जलवायु पर भी दीर्घ कालीन प्रभाव पड़ने लगेगा। इससे ना सिर्फ पेड़ पौधे, बल्कि इंसानों की जिंदगियों भी डगमगाने लगेंगी। इसलिए शुक्र मनाइए कि हमारी पृथ्वी के पास अपना चंद्रमा है।

इंसान पर मौसम का प्रभाव

बदलते मौसम का असर सभी पर पड़ता है चाहे वह इंसान हो या जानवर। आपने गौर किया होगा कि जब बारिश होती है तो अचानक आसपास का वातावरण शांत हो जाते हैं। कभी-कभी जब तीखी धूप होती है तो आप चिड़चिड़े हो जाते हैं। कभी हवा तेज चलती है तो आपका मन खिल उठता है। ज्यादा ठंड पड़ती है तो आप का दिमाग सुस्त हो जाता है। अतः यह सिद्ध हो चुका है कि मौसम का असर मिजाज पर पड़ता है। मौसम में पूरे साल कुछ न कुछ बदलाव आते रहते हैं। इस बदलाव के साथ ही रात और दिन में बदलाव आता है। इस बदलाव से पौधे, जानवर और मनुष्य कई तरह से प्रभावित होते हैं। पक्षी पलायन करना शुरू कर देते हैं। मौसम में आने वाले बदलावों से मनुष्यों पर भी काफी प्रभाव पड़ते हैं। बाहरी कारकों से व्यक्तियों की नींद प्रभावित होती है। जैसे मौसम में हल्के परिवर्तनों से तापमान में बदलाव आते हैं जिससे लोगों का सोना मुश्किल हो जाता है। मनुष्यों की

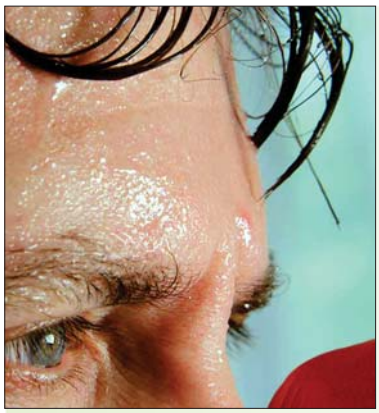

जानवरों के शरीर में बालों के कारण गर्माहट रहती है, जो ठंड हवा को रोक लेता है और वे ठंड से बचे रहते हैं। लेकिन इंसान के शरीर में ज्यादा बाल नहीं होते, लिहाजा उसे ठंड से बचने के लिए गर्म कपड़ें पहनने पड़ते हैं। ज्यादा ठंड के कारण हमारे दांत भी किटकिटाने लगते हैं। हमारा निचला जबड़ा ढीला पड़कर किटकिटाने लगता है। जबड़ा सिर के साथ सिर्फ दो बिंदुओं पर जुड़ा रहता है जो हमें ठंड का एहसास कराते हैं। ठंड में शरीर ज्यादा से ज्यादा ऊर्जा बचाते हुए खून के बहाव को तेज करने की कोशिश करता है। जबड़े या हाथ पैरों के कांपने से खून का बहाव तेज होता है और हमारी शरीर गर्म होने लगती है। जिस व्यक्ति के शरीर में जितनी अधिक मांसपेशियां होती है, उसे ठंड का अहसास उतना ही कम होता है।

आँखों की रेटिना में प्रकाश के लिए कई तरह की संवेदनशील कोशिकाएँ होती हैं। जो दिन या रात के समय हमारे दिमाग को बताती हैं कि हमारे नींद के लिए किस तरह का वातावरण चाहिए। हमारा शरीर भी एक हार्मोन का उत्पादन करता हैं जिन्हें मेलाटोनिन कहा जाता है, जो नींद के साइकिल को नियंत्रित करता है। मेलाटोनिन का स्तर आमतौर पर रात को बहुत ज्यादा हो जाता है और दिन में इसका स्तर कम हो जाता है क्योंकि इसका स्तर प्रकाश के कारण प्रभावित होता है। तापमान के आने वाले उतार-चढ़ाव से कई तरह की मौसमी बीमारियों का सामना करना पड़ता है। इस तरह की समस्या से प्रभावित लोग उदास और मूडी महसूस करते हैं। ठंड किसी को नहीं छोड़ती। ठंड, किसी को कान में लगती है तो किसी को पैर या माथे पर त्वचा को ठंड लगने पर अलग अलग ढंग से मस्तिष्क आपको चेतावनी देने लगता है। चेतावनियां मिलते ही दिमाग इंसान को जिंदा रखने के लिए जबरदस्त इंतजाम करने लगता है।

इंसानी त्वचा का `हीट सेंसर'

हमारी त्वचा में तापमान मापने वाले सेंसर होते हैं इन्हें 'हीट सेंसर' कहा जाता है सेंसर हमें गर्मी, सर्दी का अहसास कराते हैं। शरीर के अलग अलग जगहों पर ये 'हीट सेंसर' होते हैं। किसी के कान में सबसे ज्यादा हीट सेंसर होते हैं तो किसी के हाथ में। जहाँ हीट सेंसर ज्यादा होंगे, ठंड का ज्यादा अनुभव पहले वहीं होगा। गर्मी लगने पर भी सेंसर सक्रिय होते हैं उनके सिग्नल तुरंत दिमाग तक जाते हैं और फिर शरीर खुद को ठंडा रखने के लिए पसीना छोड़ने लगता है। हीट सेंसरों की संख्या भी अलग-अलग होती है। यह शरीर के अंग के आधार पर निर्भर करता है। यह कुछ लोगों में ज्यादा होते हैं तो कुछ में कम। हम भले कहीं रहे, चाहे हिमालय में या जंगलों में, हमारे शरीर का तापमान जल्दी नहीं बदलता। प्रत्येक इंसान के शरीर का तापमान करीब 36.5 डिग्री सेल्सियस होता है। यह हल्का घटता बढ़ता रहता है लेकिन बहुत ज्यादा नहीं। अगर शरीर का तापमान 41 डिग्री से ज्यादा या 30 डिग्री के नीचे चला जाए तो शरीर के कुछ अंग काम करना बंद कर देते हैं। ऐसे में जान खतरे में हो सकती है। इंसान बेहोश हो सकता है, उसे हाइपोथर्मिया हो सकता है। ज्यादा देर ऐसी स्थिति रहने पर मौत भी हो सकती है। ऐसी हालत में दिमाग बेहद सक्रिय हो जाता है। वह इंसान को बचाने की कोशिश करता है। उसे हीट सेंसरों के जरिए चेतावनी मिलने लगती है कि ठंड ज्यादा है और शरीर इससे प्रभावित हो रहा है।

ठंड से कैसे बचते हैं हम

किसी को अगर ठंड लगती है तो उसका बदन कांपना शुरू हो जाता है। त्वचा के रोमरोम में छोटे छोटे दाने उभरने लगते हैं। शरीर पर जो बाल होते हैं वे हमें ठंड से बचाते हैं। तभी तो अधिक बाल वाले जानवरों को ठंड कम लगती है। उनमें बहुत ही छोटी मांसपेशी होती है। यह उस जगह पर होती है जहां बाल हमारी त्वचा से जुड़ा रहता है। जब ठंड लगती है तो मांसपेशी सिकुड़ने लगती है और बाल खड़ा हो जाता है। शरीर पर खूब बाल हों तो ठंड कम लगती है। जानवरों के शरीर में बालों के कारण गर्माहट रहती है, जो ठंड हवा को रोक लेता है और वे ठंड से बचे रहते हैं। लेकिन इंसान के शरीर में ज्यादा बाल नहीं होते, लिहाजा उसे ठंड से बचने के लिए गर्म कपड़ें पहनने पड़ते हैं। ज्यादा ठंड के कारण हमारे दांत भी किटकिटाने लगते हैं। हमारा निचला जबड़ा ढीला पड़कर किटकिटाने लगता है। जबड़ा सिर के साथ सिर्फ दो बिंदुओं पर जुड़ा रहता है जो हमें ठंड का एहसास कराते हैं। ठंड में शरीर ज्यादा से ज्यादा ऊर्जा बचाते हुए खून के बहाव को तेज करने की कोशिश करता है। जबड़े या हाथ पैरों के कांपने से खून का बहाव तेज होता है और हमारी शरीर गर्म होने लगती है। जस व्यक्ति के शरीर में जितनी अधिक मांसपेशियां होती है, उसे ठंड का अहसास उतना ही कम होता है।

महिलाओं को ठंड कम लगती

वैसे ठंड सभी को परेशान करती है। लेकिन शारीरिक रचना अलग होने के कारण महिलाओं को ठंड ज्यादा परेशान नहीं करती। ठंड से बचाव के लिए मांसपेशियों का होना जरूरी है। औसतन एक पुरुष में मांसपेशियां करीब 40 फीसदी होती हैं, जबकि एक महिला का शरीर 25 फीसदी मांसपेशियों से बना होता है। इसके बावजूद महिलाओं के शरीर में ठंड से बचने की काबिलीयत पुरुषों से ज्यादा होती है। महिलाओं का शरीर इस तरह बना होता है कि

अंदरूनी अंग ज्यादा सुरक्षित रहें। ऐसा इसलिए होता है ताकि गर्भ में पल रहा बच्चा भी गर्म रहे वैसे आम धारणा है कि मोटे व्यक्तियों को ठंड कम लगती है। जिन लोगों के शरीर में चर्बी ज्यादा होती है वे दुबले पतलों के मुकाबले दो डिग्री कम तापमान सहन कर सकते हैं। लेकिन अगर आप कड़ाके की सर्दी में भी बाहर निकलना पंसद करते हैं तो वजन बढ़ाने के बारे में मत सोचिए बल्कि ज्यादा शारीरिक श्रम कीजिए। इससे मांसपेशियां बनेंगी, शरीर में ताकत आएगी और ठंड भी दूर भागेगी।

जलवायु परिवर्तन से भारत को खतरा

वैज्ञानिकों द्वाराजारी एक रिपोर्ट के अनुसार भारत को जलवायु परिवर्तन से सबसे ज्यादा नुकसान उठाना पड़ सकता है। 67 विकसित और विकासशील देशों पर जलवायु परिवर्तन से पड़ने वाले संभावित असर का मूल्यांकन किया गया। मौसमी आपदाओं के लिए संवेदनशीलता, ऊर्जा उत्पादन में होने वाले बदलावों के जोखिम और जलवायु परिवर्तन से निपटने की क्षमता को इस मूल्यांकन का आधार बनाया गया था। उसमें सबसे ज्यादा जलवायु परिवर्तन से खतरा भारत को बताया गया है। उसका असर कृषि पर ज्यादा पड़ेगा। तापमान परिवर्तन और कम होती बारिश से वे इलाके सबसे ज्यादा प्रभावित होंगे जहां सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है। वहीं पाकिस्तान, बांग्लादेश और फिलीपींस में भी मौसम में हो रहे बदलाव के कारण तूफानों और बाढ़ का खतरा बताया गया है। इसमें जलवायु से जुड़े जोखिमों से निपटने में पाकिस्तान की तैयारी सबसे कमजोर बताई गई है। जलवायु परिवर्तन से सबसे ज्यादा प्रभावित होने वाले टॉप10 देशों में आधे दक्षिण और दक्षिण पूर्व एशिया में हैं। इन 10 देशों में ओमान, श्रीलंका, कोलंबिया, मेक्सिको, केन्या और दक्षिण अफ्रीका शामिल हैं। पांच देश जिन पर जलवायु परिवर्तन से जुड़े जोखिमों का खतरा सबसे कम है, उनमें फिनलैंड, स्वीडन, नॉर्वे, एस्टोनिया और न्यूजीलैंड शामिल हैं।

जलवायु परिवर्तन का असर अन्य प्रजातियों पर भी पड़ेगा। विश्व में जमीन पर पायी जाने वाली पौधों की लगभग 40 फीसदी प्रजातियों को अत्यंत दुर्लभ श्रेणी में वर्गीकृत किया गया है। जलवायु में आ रहे बदलावों ने इन प्रजातियां को विलुप्ति के कगार पर ला दिया है। यह बात एरिजोना विश्वविद्यालय द्वारा किये गए नए शोध में सामने आयी है। इस शोध के निष्कर्ष जर्नल साइंस एड वांसेज के जलवायु परिवर्तन पर छपे विशेष अंक में प्रकाशित किए गए हैं। जिसे कॉप-25 के मद्देनजर प्रकाशित किया गया है। गौरतलब है 2 से 13 दिसंबर के बीच मैड्रिड में जलवायु परिवर्तन पर अंतराष्ट्रीय सम्मेलन 'कॉप-25' हुआ था जिसमें जलवायु परिवर्तन पर गंभीर चिंता जताई गई थी।

समुद्री जीवों पर भी असर

हाल के वर्षों में जलवायु परिवर्तन से समुद्री जीवों पर भी असर पड़ने लगा है। वातावरण में अधिक कार्बन डाइऑक्साइड रहने से जब तापमान बढ़ता है तो अधिकांश गर्मी समुद्र सोख लेता है। इसके कारण पानी गर्म हो जाता है और ऑक्सीजन घटने लगती है। वैज्ञानिकों के अनुमान के मुताबिक साल 1960 से 2010 के बीच महासागरों में ऑक्सीजन की मात्रा दो फ़ीसदी घटी है। ऑक्सीजन में कमी का ये वैश्विक औसत है। ऐसे देखने में तो ये ज़्यादा नहीं लगता लेकिन कुछ जगहों पर ऑक्सीजन की मात्रा में 40 फ़ीसद तक कमी आने की आशंका जाहिर की गई है। जलवायु परिवर्तन और पोषक तत्वों से पैदा होने वाले प्रदूषण की वजह से महासागरों में ऑक्सीजन घट रही है। इससे मछलियों की कई प्रजातियां ख़तरे में धिर गई हैं। प्रकृति के लिए काम करने वाले समूह 'आईयूसीएन' के एक गहन अध्ययन के जरिए ये जानकारी सामने आई है। शोधकर्ताओं का कहना है कि कई दशकों से इस बात की जानकारी है कि समुद्र में पोषक तत्व कम हो रहा है लेकिन अब जलवायु परिवर्तन की वजह से स्थिति लगातार ख़राब होती जा रही है।एक अध्ययन से पता चला है कि 1960 के दशक में महासागरों में 45 ऐसे स्थान थे, जहां ऑक्सीजन कम थी लेकिन अब इनकी संख्या बढ़कर 700 तक पहुंच गई है। ऑक्सीजन की कमी के कारण ट्यूना, मार्लिन और शार्क सहित कई प्रजातियों को खतरा है।

आक्सीजन पर वार

काफी समय से कल कारखानों से नाइट्रोजन और फास्फोरस जैसे रसायनों के निकलने से महासागरों में ऑक्सीजन का स्तर गिर रहा है। इनके तटों के करीब ऑक्सीजन की मात्रा घटने

हाल के वर्षों में जलवायु परिवर्तन से समुद्री जीवों पर भी असर पड़ने लगा है। वातावरण में अधिक कार्बन डाइऑक्साइड रहने से जब तापमान बढ़ता है तो अधिकांश गर्मी समुद्र सोख लेता है। इसके कारण पानी गर्म हो जाता है और ऑक्सीजन घटने लगती है। वैज्ञानिकों के अनुमान के मुताबिक साल 1960 से 2010 के बीच महासागरों में ऑक्सीजन की मात्रा दो फ़ीसदी घटी है। ऑक्सीजन में कमी का ये वैश्विक औसत है। ऐसे देखने में तो ये ज़्यादा नहीं लगता लेकिन कुछ जगहों पर ऑक्सीजन की मात्रा में 40 फ़ीसद तक कमी आने की आशंका जाहिर की गई है। जलवायु परिवर्तन और पोषक तत्वों से पैदा होने वाले प्रदूषण की वजह से महासागरों में ऑक्सीजन घट रही है। इससे मछलियों की कई प्रजातियां ख़तरे में धिर गई हैं।

का यह प्रमुख कारक है। वैज्ञानिकों का कहना है कि ऑक्सीजन की मात्रा में थोड़ी भी कमी समुद्री जीवन पर बड़ा असर डाल सकती है। पानी में ऑक्सीजन की कमी होना जेलीफिश जैसी प्रजातियों के अनकूल है लेकिन ट्यूना जैसी बड़ी और तेजी से तैरने वाली प्रजातियों के लिए ये स्थिति अच्छी नहीं है। बीते 50 सालों में ऑक्सीजन की मात्रा में चार गुना तक कमी आई है। महासागरों में ऑक्सीजन कमी उसमें रहने वाली प्रजातियों के लिए खतरे की घंटी है। ट्यूना, मार्लिन और कुछ शार्क जैसे प्रजाति ऑक्सीजन की कमी को लेकर विशेष रूप से संवदेनशील हैं और यह एक बुरी खबर है। बड़ी मछलियों को अधिक आक्सीजन की जरूरत होती है। शोधकर्ताओं के अनुसार, ये जीव समुद्रों के उथले स्थान पर आ रहे हैं जहां ऑक्सीजन की मात्रा अधिक है। हालांकि, यहां इनके पकड़े जाने का खतरा भी अधिक रहता है। अगर दुनिया के देशों द्वारा कार्बन उत्सर्जन पर रोक नहीं लगाई गई तो सन् 2100 तक महासागरों की ऑक्सीजन तीन से चार प्रतिशत तक घट सकती है। दुनिया के उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में इसके बुरे असर की संभावना है। जैव विविधता में सबसे समृद्ध जलस्तर के ऊपरी 1,000 मीटर में बहुत नुकसान होने की आशंका है।

ऑक्सीजन में कमी धरती के जनजीवन को भी प्रभावित करेगा। अगर ऑक्सीजन कम होती है तो इसका मतलब है कि जैव विविधता को नुकसान पहुँचेगा। यह महासागरों में ऊर्जा और बायो केमिकल साइकलिंग की स्थिति को बदल देगा। महासागरों की ऑक्सीजन कम होने से समुद्र के इकोसिस्टम पर ख़तरा बढ़ जाएगा। ऐसे में ऑक्सीजन की कमी वाले इलाकों को बढ़ने से रोकने के लिए ग्रीनहाउस से निकलने वाली गैसों पर प्रभावी तरीके से रोक लगाने की जरूरत है। इसके साथ ही खेती और दूसरी जगहों से पैदा होने वाले प्रदूषण पर काबू पाना भी जरूरी है।

जलवायु परिवर्तन से ऑक्सीजन की कमी मानव जीवन को भी प्रभावित करेगा। जीने के लिए आक्सीजन जरूरी है। साथ ही शरीर के विभिन्न अंगों जैसे, मस्तिष्क, लिवर और किडनी समेत सभी अंगों को काम करने के लिए इसकी जरूरत पड़ती है। ऐसे में जब शरीर में गंभीर रूप से ऑक्सीजन की कमी हो जाती है तो उसे हाइपोजेमिया या हाइपोक्सिया कहते हैं। इंसान का शरीर सुचारु रूप से तभी काम कर पाता है जब उसके सभी भागों में ऑक्सीजन की पूर्ति आवश्यकतानुसार होती है। ऑक्सीजन की वजह से ही शरीर उचित तरीके से काम करता है। ऑक्सीजन की ये पूर्ति पूरे शरीर में खून के जरिये होती है। लेकिन कई बार शारीरिक कमी और कुछ बीमारियों के कारण शरीर के लिए जरूरी ऑक्सीजन का स्तर जरूरत से ज्यादा नीचे आ जाता है। इस स्थिति में कई बार सांस लेने में तकलीफ होने लगती है। इसका सीधा संबंध वायू प्रदूषण से है। आज भारत के अधिकांश शहर की वायु प्रदूषित होती जा रही है। जिसके कारण वायुमंडल में आक्सीजन की मात्रा के कम होने की संभावना बढ़ गई है। अगर यही स्थिति रही तो जल और शुद्ध वायूके लिए लोग भविष्य में तरसेंगे। ऑक्सीजन का घटना सभी के लिए खतरे का संकेत है। जिसे समय रहते हमें सजग हो जाना चाहिए।

vijankumarpandey@gmail.com

डॉ. स्वाति तिवारी का जन्म 17 फरवरी 1960 में धार म.प्र. में हुआ। एम.एस-सी (प्राणीशास्त्र), एलएलबी, एम.फिल तक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात आपने समाजशास्त्र में शोधकार्य किया। कई संगठनों की संचालक डॉ. तिवारी का हिन्दी साहित्य में भी महत्वपूर्ण स्थान है। अब तक उनकी 15 से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है जिसमें बैगनी फूलों वाला पेड़, अकेले होते लोग, स्वाति तिवारी की चुनिंदा कहानियां और सवाल आज भी जिन्दा हैं विशेष उल्लेखनीय है। आपको कई उल्लेखनीय सम्मान और पुरस्कार प्राप्त है जिसमें राष्ट्रीय मानवधिकार आयोग दिल्ली का सम्मान, वगेश्वरी सम्मान, राष्ट्रीय लाड़ली मीडिया पुरस्कार शामिल हैं। आप अफ्रीका और भारत के विश्व हिन्दी सम्मेलन में मध्यप्रदेश शासन का प्रतिनिधित्व कर चुकी हैं। भोपाल के पक्षी नामक पुस्तक में आपने प्रवासी पक्षियों के जीवन के वैज्ञानिक पक्ष उजागर किया है। पक्षी सभी उम्र के व्यक्तियों के लिए आकर्षण का केंद्र बने रहते हैं। पक्षियों को जानने की जिज्ञासा जैसे - वे कहां से आते हैं और कहां पाए जाते हैं, उनका भोजन, अंडा और अन्य विशेषताओं से संबंधित जानकारी इस पुस्तक में उपलब्ध कराई गई है। लेखिका स्वयं जीव-विज्ञान की विद्यार्थी रही हैं और उन्होंने पक्षियों को अपने कैमरे में कैद कर पुस्तक के माध्यम से उपलब्ध कराया है। लेखिका को विश्वास है कि इसे पढ़कर पाठक स्वयं बर्ड वॉचिंग कर सकेंगे।

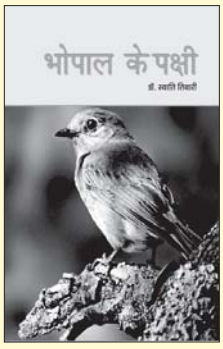

अन्तरिक्ष अन्वेषण के कीर्तिमान

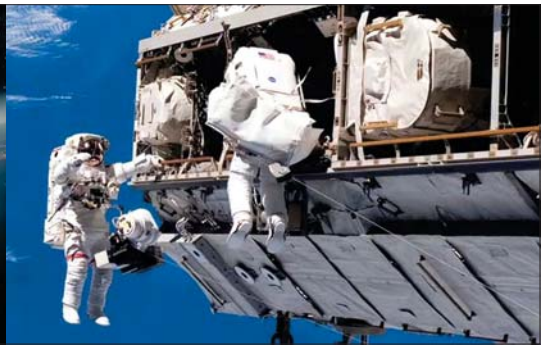

कालीशंकर

इसरो के वरिष्ठ वैज्ञानिक विगत लगभग चालीस वर्षों से अंतरिक्ष विज्ञान और अंतरिक्ष अन्वेषण पर लेखन करते रहे हैं। तीन सौ से अधिक लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपे तथा 25 पुस्तकें प्रकाशित हुईं हैं। आपको कई राष्ट्रीय सम्मानों से सम्मानित किया गया है। कालीशंकर लखनऊ में निवास करते हैं।

12 अप्रैल 1961 को अन्तरिक्ष में जाने वाले सोवियत संघ के यूरी गगारिन प्रथम व्यक्ति तथा 16 जून, 1963 को अन्तरिक्ष में जाने वाली वैलेन्तीना तेरेस्कोवा प्रथम महिला थीं। अन्तरिक्ष अन्वेशण शुरू से ही मानव का पसंदीदा क्षेत्र रहा है तथा आज की तिथि तक इस क्षेत्र में अनेक कार्य सम्पन्न किये जा चुके हैं। प्रस्तुत लेख में अन्तरिक्ष अन्वेषण के रिकार्डों के विभिन्न पहलुओं का वर्णन किया गया है।

प्रारंभिक कक्षीय और उपकक्षीय उड़ानें

यूरी गगारिन की उड़ान कक्षीय उड़ान थी लेकिन 5 मई 1961 को उत्पन्न अमरीकी अन्तरिक्ष यात्री अलन शेफर्ड की उपकक्षीय उड़ान थी। जब अन्तरिक्षयान 100 कि.मी. से ऊपर (अर्थात कर्मलिन रेखा-अर्थात 100 कि.मी. की ऊँचाई) चला जाता है तो उसे कक्षीय उड़ान तथा इससे नीचे रहने पर उपकक्षीय (सब-आरबिटल) उड़ान कहा जाता है। उपर्युक्त वर्णित उड़ानें प्रथम कक्षीय और प्रथम उपकक्षीय उड़ानें थीं।

अन्तरिक्ष उड़ान के `प्रथम` के रिकार्ड

अन्तरिक्ष में स्पेस वॉक करने वाले प्रथम व्यक्ति सोवियत संघ के अलेक्सी लयोनोव थे तथा यह स्पेस वॉक उन्होंने 18 मार्च 1965 को किया। अन्तरिक्ष यात्रा के दौरान अन्तरिक्ष यान से बाहर निकलकर मुक्त अन्तरिक्ष में विभिन्न प्रकार के कार्यों- इन्स्टालेशन, मरम्मत, विभिन्न परीक्षणों को करने की प्रक्रिया को स्पेस वॉक कहते हैं। चन्द्र कक्षा में प्रवेश करने वाले प्रथम व्यक्ति अपोलो-8 के अन्तरिक्ष यात्री-फ्रैन्क बोर्मन, जिम लोवेल और बिल ऐन्डर्स थे। अन्तरिक्ष में दो अन्तरिक्ष यानों-सोयुज-4 और सोयुज-5 की जुड़न प्रक्रिया तथा दोनो यानों की बीच अंतरिक्ष यात्रियों की अदला बदली पहली बार 16 जनवरी, 1969 को हुई। चन्द्र सतह पर मानव की प्रथम लैन्डिग 20 जुलाई, 1969 को हुई तथा अन्तरिक्ष यात्री थे नील आर्मस्ट्रांग और बज़ अल्ड्रिन। पुनः प्रयोज्यीय (रीयूजेबुल) अन्तरिक्षयान (अमरीकी स्पेस षटल) की प्रथम उड़ान 12 अप्रैल, 1961 को हुई जिसके कमान्डर जान यंग और पायलट राबर्ट क्रिपन थे। अन्तरिक्ष उड़ानों में 7 बार इष्टतम जाने वाले प्रथम व्यक्ति अन्तरिक्ष यात्री जेरी रॉस है तथा यह रिकार्ड 19 अप्रैल 2002 को बना। अन्तरिक्ष में एक समय में पहली बार 8 लोगों की उपस्थिति 30 अक्टूबर से 6 नवम्बर 1985 के बीच स्पेस शटल की उड़ान एस टी एस-61ए के द्वारा सम्भव हुई। अंतरिक्ष में एक समय में 4 महलाओं की उपस्थिति पहली बार 5 से 20 अप्रैल, 2010 के बीच हुई। विश्व के प्रथम अन्तरिक्ष पर्यटक डेनिस टिटो हैं। अन्तरिक्ष में एक अन्तरिक्ष स्टेशन (अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष स्टेशन) से 6 अन्तरिक्ष यानों की जुड़न (डाकिंग) प्रक्रिया 9 जुलाई, 2018 को हुई। एक समय में अन्तरिक्ष में पहली बार 13 लोगों की उपस्थिति 17 जुलाई, 2009 को हुई। इसमें चार अन्तरिक्ष यान अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष स्टेशन से जुड़े हुए थे। ऐसी ही एक घटना 14 मार्च 1995 से 18 मार्च, 1995 के बीच हुई लेकिन चार अन्तरिक्ष यान आपस में जुड़े हुए नहीं थे। 6 अन्तरिक्ष उड़ाने पूरा करने वाले प्रथम व्यक्ति जान यंग हैं।

चन्द्र सतह पर पदार्पण करने वाले प्रथम व्यक्ति नील आर्मस्ट्रांग और बज़ अल्ड्रिन

अन्तरिक्ष यात्रा के अवधि (ड्यूरेशन) के रिकार्ड

विभिन्न देशों की अन्तरिक्ष यात्रा रिकार्ड

अभी (28.09.2019) तक विभिन्न देशों के 562 अन्तरिक्ष यात्री अन्तरिक्ष में जा चुके हैं। इनमें रूस/सोवियत संघ के 123, अमरीका के 345 एवं विभिन्न 36 देशों के अन्तरिक्ष यात्री शामिल हैं। इन सभी देशों के अन्तरिक्ष यात्रियों ने अन्तरिक्ष में कुल 54449 दिन गुजारे हैं।

अन्तरिक्ष में अन्तरिक्ष यात्रियों के द्वारा गुजारा गया कुल समय

अन्तरिक्ष में सबसे अधिक (कम्युलेटिव) समय रूस के गेनैडी पडाल्का ने गुजारा है तथा अपनी 5 उड़ानों के द्वारा अन्तरिक्ष में उनका गुजारा हुआ समय है 878.48 दिन। महिलाओं में यह रिकार्ड अमरीकी महिला अन्तरिक्ष यात्री पेग्गी ह्विटसन के पास है जिन्होंने अपनी 3 उड़ानों के द्वारा अन्तरिक्ष में 665.932 दिन गुजारा है।

सबसे लम्बी अन्तरिक्ष उड़ान के रिकार्ड

इस रिकार्ड में पहला नाम है रूसी कास्मोनट वैलेरी पालिकोव का, जिन्होंने एक समय में 8 जनवरी, 1994 से 22 मार्च 1995 के बीच अन्तरिक्ष में सबसे लम्बा समय-437.7 दिन गुजारा तथा उनका यह रिकार्ड 24 साल से अविजेय बना हुआ है। महिलाओं में यह रिकार्ड पेग्गी ह्विटसन के पास है जिन्होने अपनी एक उड़ान से अन्तरिक्ष में 289.2 दिन गुजारे।

अन्तरिक्ष में लगातार मानव उपस्थिति का रिकार्ड

31 अक्टूबर, 2000 से अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष स्टेशन में लगातार मानव उपस्थिति बनी हुई है जो आज की तिथि तक 18 वर्ष, 278 दिन का समय बनता है। पहले यह रिकार्ड सोवियत/रूसी अन्तरिक्ष स्टेशन मीर के पास था जिसने अन्तरिक्ष में 9 वर्ष 358 दिनों तक लगातार मानव उपस्थिति बनाये रखी।

चन्द्र सतह एवं चन्द्र कक्षा प्रवास रिकार्ड

चन्द्र सतह पर इष्टतम समय तक रुकने का रिकार्ड 74 घं 59 मि. 40 सेकन्ड का है जो अपोलो-17 चन्द्र मिशन के अन्तरिक्ष यात्रियों यूगेन कर्नन और हैरिसन स्मिट के पास है। चन्द्रमा की कक्षा में इष्टतम समय तक रूकने का रिकार्ड 6 दिन 4 घंटे का है तथा यह रिकार्ड अपोलो-17 के अन्तरिक्ष यात्री रोनाल्ड ईवान्स के पास है।

गति और ऊँचाई के रिकार्ड

पृथ्वी से सबसे दूर जाने वाले अन्तरिक्ष यात्री हैं अपोलो-13 मिशन के जिम लोवेल, फ्रेड हेज़ तथा जैक स्विगर्ट तथा जब वे मिशन की असफलता के कारण वापस आने के लिए चन्द्रमा की दूरस्थ साइड (चन्द्रमा से 254 कि. मी. दूर) पहुँचे तो उस समय इन अन्तरिक्ष यात्रियों की पृथ्वी से दूरी 400,117 कि.मी. थी। आज की तिथि तक मनुष्य पृथ्वी से इष्टतम इतनी ही दूरी तक जा सका है। यह रिकॉर्ड 15 अप्रैल, 1970 को बना।

मानव के द्वारा पृथ्वी से इष्टतम गति से जाने का रिकार्ड

अपोलो-10 के अन्तरिक्ष यात्रियों (थामस स्टैफर्ड, जान यंग और यूगेन कर्नन) का अन्तरिक्ष में प्रमोचन 26 मई, 1969 को 39897 कि.मी. प्रति घन्टे की गति से किया गया जो ध्वनि की गति का 32 गुना तथा प्रकाश की गति का 0.00037 प्रतिशत था। यह मानव के द्वारा इष्टतम गति से चली गई दूरी थी तथा यह एक विश्व रिकार्ड है जो 26 मई, 1969 को बना।

उम्र के रिकार्ड

घर्मन टिटोव 6 अगस्त, 1961 को वोस्टोक-2 अन्तरिक्ष यान से 25 वर्ष की उम्र में अन्तरिक्ष

अमरीकी स्पेस शटल की प्रथम उड़ान के कमान्डर जान यंग

अंतरिक्ष में सात बार जाने वाले विश्व के प्रथम अंतरिक्ष यात्री ज़ेरी रॉस

में जाने वाले सबसे कम उम्र के पुरूष हैं। 16 जून, 1963 को वोस्टोक-6 अन्तरिक्षयान के द्वारा 26 वर्ष की उम्र में अन्तरिक्ष में जाने वाली वैलेन्तीना तेरेस्कोवा सबसे कम उम्र की अन्तरिक्ष महिला हैं।

77 वर्ष की उम्र में 29 अक्टूबर, 1998 को स्पेस शटल की उड़ान एसटीएस-95 के द्वारा अन्तरिक्ष में जाने वाले जॉन ग्लेन विश्व के सबसे अधिक उम्र वाले अन्तरिक्ष यात्री हैं। महिलाओं में यह रिकार्ड महिला अन्तरिक्ष यात्री पेग्गी ह्विटसन के पास है जो 57 वर्ष की उम्र में अन्तरिक्ष में गईं।

स्पेस वॉक के रिकार्ड

स्पेस वॉक अन्तरिक्ष अन्वेषण का एक महत्वपूर्ण अंग होता है तथा यह अत्यन्त आवश्यक कार्य होता है। स्पेस वॉक अन्तरिक्ष यान से बाहर निकलकर मुक्त और शून्य अन्तरिक्ष में किया जाता है। विश्व के सबसे बड़े स्पेस वॉकर रूस के अनाटोली सोलोव्यो कहे जाते हैं जिन्होने 16 स्पेस वॉकों के द्वारा मुक्त अन्तरिक्ष में 82 घन्टे 21 मि. का समय गुजारा। महिलाओं में सबसे बड़ी स्पेस वॉकर का खिताब अमरीकी महिला अन्तरिक्ष यात्री पेग्गी ह्विटसन के पास है जिन्होंने 10 स्पेस वाकों के द्वारा मुक्त अन्तरिक्ष में 60 घन्टे 21 मि. का समय गुजारा। किसी एक मिशन के दौरान सबसे अधिक स्पेस वाकें अनाटोली सोलोव्यो के द्वारा की गईं तथा इनकी संख्या 7 थीं। ये स्पसे वॉकें 1997-98 में मीर अन्तरिक्ष स्टेशन से की गईं।

दुनिया की सबसे लम्बी स्पेस वॉक 8 घं० 56 मि. की थी जिसे 11 मार्च, 2001 को अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष स्टेशन की असेम्बली के दौरान स्पेस शटल मिशन एस टी एस-102 से महिला अन्तरिक्ष यात्री सुसान हेल्म्स और पुरूष अन्तरिक्ष यात्री जेम्स वॉस के द्वारा की गई। स्पेस वाकों के दौरान अन्तरिक्ष यात्री एक टीथर (रस्सी) के द्वारा अन्तरिक्ष यान से बँधे रहते हैं। विश्व की पहली अनटीथर्ड स्पेस वॉक ब्रूस

मैकेन्डल्स के द्वारा स्पेस शटल मिशन एसटीएस-41बी से की गई (7 फरवरी, 1984 को)।

कुछ दिलचस्प तथ्य

i) अन्तरिक्ष इतिहास में केवल एक ही विवाहित जोड़ा हुआ है जो 1992 में स्पेस शटल की उड़ान एसटीएस-47 के द्वारा एक साथ अन्तरिक्ष में गया। यह जोड़ा है मार्क सी ली (पति) और जैन डेविस (पत्नी)।

ii) 10 अगस्त, 2003 को अन्तरिक्ष इतिहास में एक विचित्र शादी हुई जिसमें वर (कास्मोनट यूरी मैलेंन्चेन्को) अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष स्टेशन में थे तथा वधू डिमित्रीवा टेक्सास में थी। यह शादी उपग्रह के माध्यम से सम्पन्न हुई।

अन्तरिक्ष यात्रा में जानवरों के रिकार्ड

अन्तरिक्ष में प्रवेश करने वाले प्रथम जानवर फलों की मक्खियाँ (फ्रूट लाईज) थी जिनका प्रमोचन 1947 में अमरीका द्वारा वी-2 राकेट से 109 कि.मी. ऊँचाई पर किया गया। अंतरिक्ष से सुरक्षित वापस आने वाले भी यही प्रथम जानवर थे। 3 नवम्बर 1957 को अन्तरिक्ष की कक्षा में जाने वाला प्रथम जानवर लाइका कुतिया थी। उस समय तक अन्तरिक्ष कक्षा से बाहर निकालने की तकनीकी विकसित नही हुई थी इसलिए कुतिया के बचने की कोई आशा नहीं थी तथा अनेक घन्टों की उड़ान के दौरान ही उसकी मृत्यु हो गई। बेल्का और स्ट्रेल्का प्रथम कुत्ते थे जो 19 अगस्त 1961 को पृथ्वी की कक्षा से सुरक्षित वापस आये।

अन्तरिक्ष की कक्षा में सबसे लम्बा समय (22 दिन) बिताने वाले सोवियत संघ के दो कुत्ते वेटेरोक और यूगोल्योक थे जिनका प्रमोचन 22 जनवरी 1966 को किया गया तथा

विश्व की सबसे बुजुर्ग महिला अन्तरिक्ष यात्री पेग्गी ह्टिसन

विश्व के सबसे महान स्पेस वॉकर अनाटोली सोलोव्यो

ये 16 मार्च, 1966 को वापस पृथ्वी पर आये।

पृथ्वी की निम्न कक्षा से बाहर जाने वले जानवरों में रूसी कछुओं का एक जोड़ा, मक्खियाँ (वाइन लाईज़) एवं भोजन के कीड़े (मील वर्म्स) थे जिनका प्रमोचन 15 सितम्बर, 1968 को सोवियत अन्तरिक्ष यान जोन्ड-5 के द्वारा किया गया। इन जानवरों को लेकर गया कैप्सूल चन्द्रमा के 2000 कि.मी. समीप तक गया तथा बाद में सफलतापूर्वक पृथ्वी पर वापस आया। यह इतिहास का पहला अन्तरिक्षयान बना जो चन्द्रमा से पृथ्वी को सुरक्षित वापस आया।

विख्यात मानव रहित अन्तरिक्ष उड़ानों के 'प्रथम'

- अन्तरिक्ष में जाने वाला प्रथम कृत्रिम उपग्रह स्पुतनिक-1 है।
- पृथ्वी कक्षा में सबसे पुराना उपग्रह (अब भी मौजूद) वेनगार्ड-1 है जिसका प्रमोचन 17 मार्च, 1958 को किया गया था तथा आषा है कि यह 240 वर्ष तक अन्तरिक्ष की कक्षा में रहेगा।
- पृथ्वी की पलायन गति प्राप्त करने वाला, चन्द्रमा के सबसे समीप 5995 कि.मी. दूर से गुजरने वाला, तथा सूर्य केन्द्रित कक्षा (हीलियोसेन्ट्रिक) में पहुँचने वाला प्रथम अन्तरिक्ष ल्यूना-1 था।
- सूर्य की पलायन गति प्राप्त करने वाला तथा वृहस्पति ग्रह के सबसे समीप 132,000 कि.मी. दूरी से गुजरने वाला एवं सूर्य से सबसे दूर नेप्च्यून ग्रह की परिक्रमा करने वाला प्रथम अन्तरिक्ष यान पायनियर-10 है।
- पृथ्वी से सबसे दूर तथा सूर्य से सबसे दूर (20.479 बिलियन कि.मी.) जाने वाला अन्तरतारकीय क्षेत्र में प्रवेश करने वाला प्रथम अन्तरिक्ष यान वायज़र-1 है।
- यूरैनस ग्रह के सबसे समीप (81,500 कि. मी.) जाने वाला, नेप्च्यून ग्रह के सबसे समीप (40,000 कि.मी.) जाने वाला, सबसे अधिक समय से (अगस्त 1977 से) प्रचालित अन्तरिक्ष प्रोब वायज़र-2 है।
- किसी अन्तरिक्षयान और अन्तरिक्ष स्टेशन के बीच जुड़न प्रक्रिया (डाकिंग) पहली बार 7 जून से 29 जून, 1971 के बीच सम्पन्न हुई तथा जुड़न प्रक्रिया में शामिल थे- सोयुज-11 अंतरिक्षयान और सैल्युट-1 अन्तरिक्ष स्टेशन।
- किसी पुच्छलतारे (पुच्छलतारे 67 पी/चुरूमोव गेरासिमेंको) की परिक्रमा करने वाली प्रथम स्पेस प्रोब रोसेट्टा तथा उस पर प्रथम साट लैन्डिग करने वाली प्रोब फिले लैन्डर है। इसी प्रकार किसी पुच्छतारे (कामेट टेम्पेल-1) की सतह को आघात देने वाली प्रथम प्रोब 'डीप इम्पैक्ट' है।
- किसी क्षुद्र ग्रह (433 इरोज) की परिक्रमा करने वाला तथा फिर उसी पर लैन्ड करने वाला प्रथम अन्तरिक्ष यान 'नियर शूमेकर' है।
- सूर्य के सापेक्ष में उच्चतम गति (95.3 कि. मी. प्रति सेकन्ड) प्राप्त करने वाली, सूर्य के सबसे समीप (2.4 करोड़ कि.मी.) पहुँचने वाली जो दूरी वर्ष 2024 तक 69 लाख कि. मी. हो जायेगी और उस समय इस प्रोब की गति 191.7 कि.मी. प्रति सेकन्ड हो

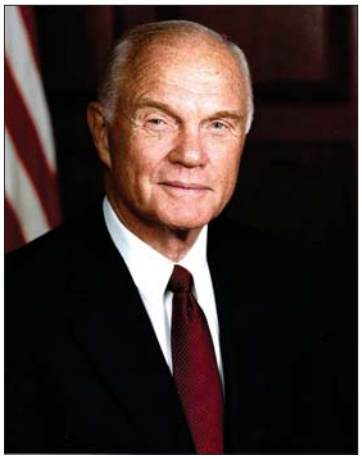

अन्तरिक्ष में सबसे अधिक उम्र (77 वर्ष) में जाने वाले अन्तरिक्ष यात्री जॉन ग्लेन

जायेगी, ऐसी प्रोब का नाम है पार्कर सोलर प्रोब। वर्ष 2024 में इतनी गति प्राप्त करने के बाद यह सौर तंत्र का सबसे द्रुतगामी पिन्ड (पुच्छलतारों को छोड़कर) बनेगा।

- पृथ्वी के सापेक्ष में सबसे तीव्र गति (265,000) कि.मी. प्रति घन्टे से जाने वाला प्रथम अन्तरिक्षयान जूनो है।
- मंगल ग्रह पर चलने वाली प्रथम स्वचालित रोवर 'सोजोर्नर' है। मंगल' ग्रह की सतह पर और साथ ही साथ किसी अन्य ब्रम्हान्डीरय पिन्ड की सतह पर (मंगल) 42.195 कि.मी. की दूरी चलने वाला प्रथम रोवर आपरच्यूनिटी है।
- अन्तरिक्ष इतिहास में एक ही अन्तरिक्षयान रहा है जो प्लूटो तथा इसके चन्द्रमाओं- चैरन, निक्स, हाइड्रा, कर्बेरोस और स्टिक्स के करीब से पहली बार गुजरा, इसने पहली बार प्लूटो तंत्र और चैरन चन्द्रमाओं के क्लोज अप चित्र लिए तथा इसी अन्तरिक्षयान के द्वारा पहली बार कूपियर बेल्ट का अन्वेषण किया गया। इस अन्तरिक्षयान का नाम 'न्यू होरिजन्स' था जिसका प्रमोचन 19 जनवरी, 2006 को अमरीका के केनवैरेल से किया गयाा। प्लूटो के सबसे समीप गुजरने के बाद अमरीका विश्व का प्रथम देश बन गया जिसने प्री-2006 अंतर्राष्ट्रीय खगोलिकी संघ की ग्रहीय परिभाषा के अनुसार सभी 9 ग्रहों का अन्वेषण सबसे पहले किया।

मानवयुक्त अन्तरिक्ष उड़ानों के कुछ अन्य `प्रथम`

- चन्द्र कक्षा में दो भिन्न चन्द्र अभियानों में जाने वाले, 5 एवं 6 अंतरिक्ष उड़ानें करने वाले, चार भिन्न भिन्न अन्तरिक्षयान उड़ाने वाले तथा पंख युक्त अन्तरिक्षयान (स्पेस शटल) से अन्तरिक्ष यात्रा करने वाले विश्व के प्रथम व्यक्ति जान यंग हैं।
- अमरीकी स्पेस शटल की प्रथम पायलट और प्रथम कमान्डर महिला एलीन कालिन्स हैं। अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष स्टेशन की प्रथम महिला कमान्डर पेग्गी ह्विटसन हैं।
- अन्तरिक्ष में जाने वाले (उपकक्षीय उड़ान) प्रथम अमरीकी अलन शेफर्ड तथा कक्षीय उड़ान में जाने वाले प्रथम अमरीकी जॉन ग्लेन हैं। अन्तरिक्ष में जाने वाली प्रथम अमरीकी महिला सैली राइड हैं।

अन्तरिक्ष में एक ही विवाहित जोड़ा- मार्क सी.ली. (पति) और जैन डेविस (पत्नी) एक साथ अन्तरिक्ष में गये।

- अन्तरिक्ष में जाने वाली प्रथम महिला अन्तरिक्ष पर्यटक अनोसेह अन्सारी तथा अन्तरिक्ष में जाने वाली पहली माँ अन्ना फिशर है।
- अन्तर्राष्ट्रीय स्टेशन को विजिट करने वाली पहली रूसी महिला येलेना सेरोवा हैं तथा रूसी अन्तरिक्ष स्टेशन मीर को विजिट करने वाली प्रथम अमरीकी महिला शैनन ल्युसिड हैं।
- दो विभिन्न अन्तरिक्ष यानों (सोयुज और स्पेस शटल) के द्वारा अन्तरिक्ष स्टेशन में (मीर में) जाने वाली और स्पेस शटल से यात्रा करने वाली प्रथम रूसी महिला येलेना कोन्डाकोवा हैं।

अपनी सभी अन्तरिक्ष उड़ानों के द्वारा अन्तरिक्ष में कुल सबसे लम्बा प्रवास (878.48 दिन) करने वाला रूसी कास्मोनट गेनैडी पडाल्का

- प्रथम भारतीय- अमरीकी महिला अन्तरिक्ष यात्री कल्पना चावला हैं जिनकी स्पेस कोलम्बिया दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी। अन्तरिक्ष में जाने वाली प्रथम कोरियावासी थी सो-यीन, प्रथम चीनी महिला ल्यू यांग, प्रथम जापानी महिला अन्तरिक्ष यात्री चियाकी मुकाई तथा अन्तरिक्ष में जाने वाला प्रथम ब्रिटिश नागरिक हेलेन शर्मन हैं।
- किसी अन्तरिक्ष स्टेशन (सैल्यूट-7) में जाने वाली, अन्तरिक्ष में स्पेस वॉक करने वाली (25 जुलाई, 1984 को) तथा दो बार अन्तरिक्ष यात्रा करने वाली विश्व की प्रथम महिला स्वेतलाना सैवित्स्क्या हैं।
- स्पेस वॉक करने वाली प्रथम अमरीकी महिला कैथरीन डी सुलीवान तथा प्रथम व्यक्ति एड ह्वाइट हैं।
- फ्रान्स के प्रथम अन्तरिक्ष यात्री जीन लूप क्रेटियन, भारत के राकेश शर्मा, कनाडा के मार्क गार्न्यू, जापान के तोयोहिरो आकीयामा, स्पेन के पेड्रो ड्यूक, चीन के यांग लीवी तथा रूस के अलेक्जेन्डर कैलेरी हैं।
- अन्तरिक्ष यात्रा में मृत्यु में को प्राप्त होने वाले प्रथम व्यक्ति ब्लैडिमिर कोमारोव हैं जिनकी 23-24 अप्रैल, 1967 के बीच सोयुज-1 अन्तरिक्षयान की लैन्डिग के समय दुर्घटना में मृत्यु हो गई।
- अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष स्टेशन से प्रथम स्पेस वॉक 7 से 8 दिसम्बर 1998 के बीच हुई जो 7 घन्टे 21 मिनट की थी तथा इसमें दो लोगों ने भाग लिया। हालिया 217 वीं वॉक 29 मई 2019 को सम्पन्न हुई जो 6 घन्टे 1 मिनट की थी।
- विश्व की दो महान शक्तियों- अमरीका और सोवियत संघ के बीच एक संयुक्त अभियान के अन्तर्गत अपोलो कमान्ड/सर्विस माड्यूल (अमरीका का) तथा रूस का सोयुज-19 कैप्सूल अन्तरिक्ष में जाकर जुड़े। इनका प्रमोचन 15 जुलाई, 1975 को किया गया तथा मिशन का समापन 24 जुलाई, 1975 को हुआ।
- अमरीका का प्रथम अन्तरिक्ष स्टेशन स्काई लैब, रूस का प्रथम स्टेशन सैल्युट-1 तथा चीन का प्रथम अन्तरिक्ष स्टेशन टायनगॉंग-1 है।

ksshukla@hotmail.com

जैव अनुसंधान एवं नैदानिकी में सूचना प्रौद्योगिकी

डॉ.दिनेश मणि

डी.फिल. डी.एस-सी तक शिक्षा प्राप्त दिनेश मणि इलाहाबाद में रसायन विज्ञान के प्रोफेसर हैं। वे तीन दशकों से विज्ञान लेखक और विज्ञान संचारक की भूमिका में विज्ञान परिदृश्य पर विद्यमान हैं। उनकी हिन्दी में 50, अंग्रेजी में 10 और 105 शोधपत्र प्रकाशित हैं। डॉक्टरेट हेतु बीस छात्रों का निर्देशन करने वाले दिनेश मणि को सरस्वती नामित पुरस्कार, बायोटेक हिन्दी ग्रन्थ पुरस्कार, सूचना प्रौद्योगिकी राष्ट्रीय, प्राकृतिक ऊर्जा पुरस्कार, अनुसृजन सम्मान, फैलोशिप अवार्ड, डॉ.सम्पूर्णानन्द नामित पुरस्कार, बाबूराव विष्णु पराड़कर नामित पुरस्कार, शताब्दी सम्मान, शिक्षा पुरस्कार, आत्माराम पुरस्कार, डॉ. जगदीश चंद्र बोस पुरस्कार, बाबू श्यामसुन्दर दास सर्जना पुरस्कार, इंदिरा गाँधी राजभाषा पुरसकार, सारस्वत सम्मान तथा आईसीएमआर पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

जैविक आँकड़ों के प्रबंधन और विश्लेषण में सूचना प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल बहुतायत से हो रहा है। इनका उद्देश्य जीव समूहों के मूलभूत तथ्यों को परिभाषित करना है ताकि बीमारियों की रोकथाम और प्रभावी उपचार संभव हो सके। जीव विज्ञान और प्रौद्योगिकी के मेल से बना यह विषय आजकल काफी प्रासंगिक हो चुका है। इसे 'कंप्यूटेशनल बायोलॉजी' कहा जाता है। बायोकेमिस्ट्री, बायोस्टेटिसटिक्स, मॉलिकुलर बायोलॉजी इत्यादि क्षेत्रों में कंप्यूटेशनल तकनीक की विशेष भूमिका है। इसका प्रयोग मनुष्य के रोगों एवं दवाओं की खोजों के दौरान नए मॉलिकुलर लक्षणों की पहचान करने और जीनोमिक सूचनाओं को समझने में किया जाता है। इसमें कम्प्यूटर द्वारा सूचनाएं जुटाने, उन्हें इकट्ठा करने व विश्लेषण करने और आनुवंशिक सूचनाओं को जोड़ने का कार्य किया जाता है।

कम्प्यूटेशनल बायोलॉजी के अन्तर्गत आण्विक जीवविज्ञान,कोशिका जीवविज्ञान, जैव रसायन विकासवादी जीव विज्ञान, जैव-प्रौद्योगिकी जनसंख्या जीव विज्ञान जैसे विषयों का अध्ययन किया जाता है। इसमें बायोमेडिकल रिसर्च, क्लिनिकल रिसर्च, ऑक्युपेशनल थेरेपी सहित मेडिकल साइंस के तमाम बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाता है। इसके अतिरिक्त स्ट्रक्चरल मॉडलिंग, कम्प्यूटेशनल केमिस्ट्री, जीनोमिक्स आदि का अध्ययन किया जाता है। इसके लिए प्रोग्रामिंग सॉटवेयर, बायोइंफार्मेटिक टूल की समझ, डाटाबेस स्किल तथा डाटा विजुअलाइजेशन जैसे कौशल की जरूरत पड़ती है।

सूचना प्रौद्योगिकी, विज्ञान के हर क्षेत्र को प्रभावित कर रही है। यह प्रयोगात्मक आणविक अनुसंधान के क्षेत्र में बड़ी मात्रा में एकत्रित चित्रांकन एवं संकेतों को पहचानकर जानकारी अर्जित करने में मदद करती है। जैव अनुसंधान एवं नैदानिकी के क्षेत्र में सूचना प्रौद्योगिकी का विशेष योगदान है। आनुवंशिकी एवं जीनोमिक्स के क्षेत्र में यह जीनोम के अनुक्रमण, पुनः टिप्पण व उनमें उत्परिवर्तनों को ढूँढ़ने में सहायक है। यह जैविक आंकड़ों को व्यवस्थित कर विश्लेषण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

सजीव प्राणी की रचनात्मक व क्रियात्मक इकाई कोशिका होती है। मानव शरीर में लगभग सौ लाख करोड़ कोशिकाएँ पायी जाती हैं। हर कोशिका में हजारों प्रोटीन, मेटाबोलाइट्स, न्यूक्लिक एसिड शामिल होते हैं। डीएनए, आरएनए को कोडित करते हैं और संदेशवाहक आरएनए से प्रोटीन का संश्लेषण होता है। कई प्रोटीन उत्प्रेरक होते हैं जो शरीर की विभिन्न रासायनिक क्रियाओं को उत्प्रेरित करते हैं। डीएनए, आरएनए या प्रोटीन में उत्परिवर्तन व्यक्ति को रोग ग्रस्त बना सकते हैं। हमारा वातावरण, खानपान भी इन क्रियाओं पर असर डालते हैं। इन विभिन्न जैव अणुओं के सही तालमेल से व्यक्ति स्वस्थ जीवन व्यतीत करता है। इस तालमेल में अवरोध या परिवर्तन मनुष्य को रोगग्रस्त कर देता है। सरल भाषा में यह कहना ठीक होगा कि प्राणी की संरचना जटिल होती है और पिछले कुछ दशकों में बीसवीं सदी के मध्य तक इसे समझना कल्पना मात्र सा प्रतीत होता था। वैज्ञानिक मूल व व्यवहारिक जीवविज्ञान को समझने के लिए शोध कर रहे हैं ।

पूर्ण जीनोम के अनुक्रमण से मनुष्य के डीएनए में छः अरब न्यूक्लियोटाइड ज्ञात हुए हैं। परन्तु इन आंकड़ों से उपलब्ध जानकारी नहीं के बराबर ही हैं। इतने बड़े जीनोम में लगभग 20000 से 25000 जीन हैं। एक साधारण पफर (puffer) मछली जिसका जीनोम मनुष्य के जीनोम की तुलना में आठ गुना छोटा है परन्तु उसके जीनोम में भी लगभग इतने ही जीन सम्मिलित हैं जितने कि मनुष्य में। किस प्रकार एक समान जीनों की संख्या इतने जटिल (मनुष्य) व साधारण पफर (puffer) मछली की संरचना के लिए जिम्मेदार है? इन विभिन्न प्रजातियों के जीनोम की तुलना कर कई नए जीन खोजे जा सकते हैं व उनके कार्यों की भी पुष्टि की जा सकती है। इस विश्लेषण से मानव चिंपैंजी, चूहे इत्यादि के आणविक स्तर पर भिन्नता का पता लगाया जा सकता है।

आनुवांशिकता की गुत्थी को सुलझाना जैव-प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण सफलता है। विगत 200 वर्षों में विज्ञान जगत में आई असाधारण प्रगति के कारण आनुवांशिकता की प्रक्रिया को बेहतर ढंग से समझा जा सका है। जीनोमिकी आनुवांशिकी का वह क्षेत्र है जिसमें हम जीवों के सम्पूर्ण जीनोम का अध्ययन करते हैं। इसमें जीवों के सम्पूर्ण डी.एन.ए. अनुक्रम और आनुवांशिक मानचित्रण करने का प्रयास किया जाता है। जीनोमिकी के अन्तर्गत किसी कोशिका या ऊतक के सभी जीन का अध्ययन डी.एन.ए., आर.एन.ए. और प्रोटीन-स्तर पर होता है। मानव जीनोम अनुक्रमण के साथ कई अन्य जीवों के जीनोम का भी अनुक्रमण किया जा चुका है और कुछ अन्य प्राणियों के सन्दर्भ में यह काम अभी जारी है जिनसे विविध जीनों के प्रकार्य को समझने में सहायता मिलेगी।

जीनोमिकी के क्षेत्र में निरंतर हो रही प्रगति को देखने हुए यह अनुमान लगाया जा रहा है कि जीनोमिक्स से प्राप्त सूचना नये लक्ष्यों की खोज करने तथा नई औषधियों को तैयार करने में काफी उपयोगी सिद्ध होगी।

सूचना प्रौद्योगिकी में कम्प्यूटर एवं माइक्रो प्रोसेसर के आगमन से पूर्व पूर्ण जीनोम अनुक्रमण का कार्य लगभग काल्पनिक प्रतीत होता था। इन आंकड़ों के रखरखाव, भंडारण, आयोजन, पुनःप्राप्ति एवं विश्लेषण के लिए कम्प्यूटिंग शक्ति व इलेक्ट्रॉनिक संग्रहण की आवश्यकता है। इन आंकड़ों के व्यवस्थित संग्रह को आंकड़ा कोष कहते हैं । आंकड़ाकोषों, जैसे प्रोटीन संरचना, डीएनए एवं प्रोटीन अनुक्रम, इत्यादि के संयोजन से अपेक्षित जानकारी हासिल की जा सकती है। सन् 1977 से सर्वप्रथम (phage)-174 के जीनोम का अनुक्रमण हुआ। इसके साथ ही कई कवकों, पौधों, पशुओं इत्यादि का भी जीनोम अनुक्रमण हुआ। इक्कीसवीं शताब्दी के शुरुआत में मानव अगुणित जीनोम में लगभग 3.3 अरब क्षार युग्मज के अनुक्रम एकत्रित हुए । मनुष्य जैसे बड़े एवं जटिल जीव के जीनोम के अनुक्रमण में टुकड़ों के संयोजन का कार्य काफी जटिल हो सकता था। परन्तु, सूचना प्रौद्योगिकी में कम्प्यूटर एवं गणितीय तथ्यों के प्रयोग से यह कार्य संभव हो पाया । इस कार्य में कई बिलियन डालर का खर्च संभावित है। नई पीढ़ी के डीएनए अनुक्रमण (New generation) से यह कार्य कुछ ही समय व कम खर्च में संपन्न हो सकता है। जीनोमिक्स एवं प्रोटियोमिक्स में आई क्रांति से 260000 से भी ज्यादा जीवों के 190 अरब से भी अधिक न्यूक्लियोटाइडस उपलब्ध हैं। प्रोटीन अनुक्रम व संरचना के आंकड़ों में तेजी से वृद्धि हो रही है।

पूर्ण जीनोम के अनुक्रमण से मनुष्य के डीएनए में छः अरब न्यूक्लियोटाइड ज्ञात हुए हैं। परन्तु इन आंकड़ों से उपलब्ध जानकारी नहीं के बराबर ही हैं। इतने बड़े जीनोम में लगभग 20000 से 25000 जीन हैं। एक साधारण पफर (puffer) मछली जिसका जीनोम मनुष्य के जीनोम की तुलना में आठ गुना छोटा है परन्तु उसके जीनोम में भी लगभग इतने ही जीन सम्मिलित हैं जितने कि मनुष्य में। किस प्रकार एक समान जीनों की संख्या इतने जटिल (मनुष्य) व साधारण पफर (puffer) मछली की संरचना के लिए जिम्मेदार है? इन विभिन्न प्रजातियों के जीनोम की तुलना कर कई नए जीन खोजे जा सकते हैं व उनके कार्यों की भी पुष्टि की जा सकती है। इस विश्लेषण से मानव चिंपैंजी, चूहे इत्यादि के आणविक स्तर पर भिन्नता का पता लगाया जा सकता है।

मानव जीनोम का अधिकांश हिस्सा नॉन कोडिंग डीएनए संबंधित है। वैज्ञानिक इस नॉनकोडिंग डीएनए के महत्व को समझने में जुटे हुए हैं। मानव जीनोम में कई ऐसे स्यूडो जीन (pseudo gene) हैं जो पहले जीन थे परन्तु उनमें उत्परिवर्तन के कारण अब वो प्रोटीन कोड नहीं करते हैं। उदाहरण के लिए मानव जीनोम के हिस्से, सुगंध के लिए जिम्मेदार हैं उनमें आधे से ज्यादा उत्परिवर्तन के कारण सक्रिय नहीं हैं। इसके विपरीत प्राइमेट्स व चूहों के जीनोम से संबंधित थे जीन सक्रिय हैं।

इस प्रकार अंतःप्रजाति जीनोम की तुलना कर जैविक अनुसंधान से जुड़े कई रहस्यों को सुलझाया जा सकता है। डीएनए में आए बिन्दु एवं आनुवंशिक अतिरिक्त संयोग वियोग तथा स्थानांतरण उत्परिवर्तन प्रजाति-करण के लिए उत्तरदायी हैं एवं समय के साथ सूचना प्रौद्योगिकी ने वैज्ञानिकों को निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर देने में सहायता की है। सूचना प्रौद्योगिकी की मदद से डी.एन.ए. में हुए बदलावों को माप कर विभिन्न जीवों के विकास को समझा जा सकता है। पूर्ण जीनोम अनुक्रमण प्रक्रिया से जटिल विकास व जीनोम में उत्परिवर्तनों के संबंध को समझा जा सकता है ।

सूचना प्रौद्योगिकी हमें उन मूल कारणों को खोजने में मदद करती है जो प्रजातिकरण के लिए जिम्मेदार हैं। जनसंख्या के

जटिल कम्प्यूटेशनल मॉडल को बनाकर समय के साथ होने वाले बदलावों को उपस्थित जानकारी द्वारा मापकर अनुमान लगाया जा सकता है। जीनोम की जटिलता वैज्ञानिकों के लिए एक चुनौती है जो गणितीय मॉडल की सहायता से शोध में लाई जा रही है।

जीन के उत्परिवर्तन से उसके प्रोटीन की त्रिआयामी संरचना में परिवर्तन आ सकता है। प्रोटीन कई महत्वपूर्ण अभिक्रियाओं में भागीदार होती है। प्रोटीन की त्रिआयामी संरचना उसके कार्य को निर्धारित करती है। एक्स-रे क्रिस्टलोग्राफी, एनएमआर स्पेक्ट्रोस्कोपी इत्यादि प्रयोगात्मक तरीकों से एकत्रित आंकड़ों से प्रोटीन की संरचना निर्धारण करने में सूचना प्रौद्योगिकी महत्वपूर्ण है। जिन प्रोटीनों की त्रिआयामी संरचना उपलब्ध नहीं है उनके अनुक्रम से जानकारी लेकर उनकी त्रिआयामी संरचना का अनुमान लगाया जा सकता है। प्रोटीन त्रिआयामी संरचना से उनके कार्य को समझने में मदद मिलती है। समान त्रिआयामी संरचना वाले प्रोटीन एक जैसे कार्य को संपन्न कर सकते हैं। उदाहरण के लिए मनुष्य के हीमोग्लोबिन एवं फलियों में लेगहीमोग्लोबिन प्रोटीन की त्रिआयामी संरचना लगभग समान है और दोनों ही आक्सीजन परिवहन का कार्य करते हैं।

विभिन्न जैव अणुओं के संपर्क शारीरिक अभिक्रियाओं का सुसंचालन करते हैं। सूचना प्रौद्योगिकी की मदद से शोधकर्ता विविध रासायनिक अभिक्रियाओं को एकीकृत कर संपूर्ण शारीरिक संरचना को समझने का प्रयास कर रहे हैं। कुशल सॉफ्टवेयरों की मदद से उनके पारस्परिक संबंधों को समझने में सहायता मिली है। प्रोटीन-प्रोटीन व प्रोटीन-अवरोध के परस्पर संबंधों को इसकी सहायता से समझा जा सका है। गणितीय तथ्यों की सहायता से कई जैव अणुओं व अवरोधों के विश्लेषण का कार्य कम समय में सार्थक हो सकता है जिससे औषधि विकास के कार्य में तेजी आई है। वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित औषधि निर्माण से औषधियों के दुष्प्रभाव में भी कमी आई है।

प्रोटीन माइक्रोएरे एवं मास स्पेक्ट्रोमेट्री (एमएस) हमें एक निश्चित समय या परिवेश में प्रोटीन के गुणात्मक व परिमाणात्मक

अल्ट्रासाउण्ड तकनीक से शरीर के अन्दर के हिस्सों की जानकारी भी उच्च आवृत्ति की ध्वनि तरंगों (2 से 15 मेगाहर्ट्ज) के प्रयोग द्वारा की जाती है। रक्त वाहिकाओं में रक्त के प्रवाह, भ्रूण संख्या एवं प्रगति से संबंधित जानकारी, आंतरिक अंगों की बनावट में विकास इत्यादि की जानकारी मिल सकती है। कम्प्यूटर प्रोग्राम द्वारा संकेतिक ध्वनि तरंगों को तुरंत ही चित्रित रूप में अध्ययन किया जा सकता है।

आंकड़े उपलब्ध कराती हैं। सूचना प्रौद्योगिकी बड़ी मात्रा में एकत्रित आंकड़ों से प्रोटीन-प्रोटीन संपर्क गतिविधियों से संबंधित जानकारी प्रदान करती है।

mRNA के मापन से जीन अभिव्यक्ति का पता लगाया जा सकता है। इस प्रक्रिया में कुछ तरीके, जैसे माइक्रोएरे SAGE इत्यादि शामिल हैं। परन्तु ये तरीके शोर-प्रवण (noise prone) हैं। सूचना प्रौद्योगिकी में ऐसे सांख्यिकीय उपकरणों का विकास शामिल हैं जो संकेत को शोर (noise) से अलग कर त्रुटिरहित जानकारी देता है। इस प्रकार के अध्ययन शरीर में विकार उत्पन्न करने वाले जीनों को निर्धारित करते हैं। उदाहरण के लिए कर्क रोग से ग्रस्त एवं एक स्वस्थ कोशिका के माइक्रोएरे के आंकड़ों का विश्लेषण कर अपविनियमित एवं निम्न विनियमित ट्रांसकिप्टस (transcripts) का पता लगाया जा सकता है।

बहुत सारे रोगों के निदान एवं अनुसंधान में चित्रांकन तकनीकों का उपयोग शामिल हैं। कम्प्यूटर तकनीकों की सहायता से हम बड़ी मात्रा में एकत्रित जैवचिकित्सा के चित्रांकन का विश्लेषण तेज एवं स्वचालित रूप में कर सकते हैं। आधुनिक चित्रांकन प्रणाली एक पर्यवेक्षक को सही, निष्पक्ष एवं तीव्रगति से छवियों के मापन में सहायक है जिससे रोगों की प्रगति एवं स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है। एक पूरी तरह से विकसित प्रणाली कुछ हद तक पर्यवेक्षक की जगह ले सकती है। ये प्रणालियां जैव चिकित्सा अनुसंधान में ही नहीं अपितु निदान में भी सहायक हैं। उदाहरण के लिए सीटी स्कैनिंग की सहायता से हृदय रोग, संक्रामक रोग, मानसिक आघात, कैंसर इत्यादि रोगों का निदान कर सकते हैं। इनके उपयोग से शरीर में अवशोषित विकिरण की मात्रा को मापा जाता है। विशाल मात्रा में प्राप्त इन आंकड़ों को एक विशेष कम्प्यूटर प्रोग्राम की मदद से चित्रांकन कर रोग संबंधी जानकारी ग्रहण की जा सकती है ।

अल्ट्रासाउण्ड तकनीक से शरीर के अन्दर के हिस्सों की जानकारी भी उच्च आवृत्ति की ध्वनि तरंगों (2 से 15 मेगाहर्ट्ज) के प्रयोग द्वारा की जाती है। रक्त वाहिकाओं में रक्त के प्रवाह, भ्रूण संख्या एवं प्रगति से संबंधित जानकारी, आंतरिक अंगों की बनावट में विकास इत्यादि की जानकारी मिल सकती है। कम्प्यूटर प्रोग्राम द्वारा संकेतिक ध्वनि तरंगों को तुरंत ही चित्रित रूप में अध्ययन किया जा सकता है। प्रयोगशालाओं में जीवों की चौबीस घंटे विस्तृत वीडियो रिकार्डिंग कर उनकी देखरेख व व्यवहार को समझने में सहायता मिलती है।

इस प्रकार सार रूप में कहा जा सकता है कि में पिछले कुछ वर्षों से सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के कारण जीव विज्ञान के अनेक प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने में सफलता मिली है। अनुक्रमण व जीन की खोज, प्रोटीन के आगामी स्वरूप का और जीन अभिव्यक्ति का अनुमान लगाना, औषधि खोज एवं उनकी रूपरेखा तैयार करना, विभिन्न प्रोटीनों में संपर्क को समझना, इत्यादि प्रमुख उदाहरण हैं। विगत कुछ दशकों में नई तकनीकों के विकास से आँकड़ों में वृद्धि हुई है और इन आँकड़ों को एकत्रित करने के साथ-साथ विश्लेषण करने हेतु कम्प्यूटर एवं दूर संचार साधनों का उपयोग प्रचलित हुआ है। वैज्ञानिकों के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती एकत्रित आँकड़ों का विश्लेषण कर जानकारी प्राप्त करने में है ।

dineshmanidsc@gmail.com

युद्ध में गेम चेंजर साबित हो सकती है ब्रह्मोस

ब्रह्मोस

शशांक द्विवेदी

एक बड़ी कामयाबी हासिल करते हुये रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) ने ओडिशा के चांदीपुर से दो ब्रह्मोस सुपरसोनिक क्रूज मिसाइल का सफल परीक्षण कर लिया है। ब्रह्मोस सुपरसोनिक क्रूज मिसाइलों को जमीन और हवाई प्लेटफार्मों से सफलतापूर्वक लॉन्च किया गया। पहली मिसाइल का प्रक्षेपण ओडिशा के एक लैंड बेस्ड मोबाइल लॉन्चर से हुआ था, जिसमें अधिकांश उपकरण स्वदेशी थे। इसमें मिसाइल एयर फ्रेम, फ्यूल मैनेजमेंट सिस्टम को डीआरडीओ ने डिजाइन किया था। पहले जमीन पर मार करने में सक्षम इस मिसाइल को मोबाइल ऑटोनॉमस लांचर से चांदीपुर में एकीकृत परीक्षण रेंज में लांच कॉम्प्लेक्स-3 से परीक्षण किया गया। मिसाइल का दूसरा प्रक्षेपण भारतीय वायु सेना (आईएएफ) द्वारा एसयू-30 एमकेआई मंच से एक समुद्री लक्ष्य के खिलाफ किया गया।

ब्रह्मोस मिसाइल नौसेना और वायुसेना में पहले ही शामिल है और अब इसे थल सेना के बेड़े में भी शामिल किया जा सकता है। नए संस्करण का प्रपल्शन सिस्टम, एयरफ्रेम, पॉवर सप्लाई समेत कई अहम उपकरण देश में ही विकसित किए गए हैं। डीआरडीओ के अनुसार नए संस्करण की लंबाई 9 मीटर है और यह एक बार में 200 किग्रा वजनी वारहेड ले जा सकती है। 290 किमी रेंज वाली यह मिसाइल ध्वनि की गति से दोगुनी रफ्तार से वार करने में सक्षम है। ये टार्गेट के करीब पहुंचने से महज 20 किमी पहले भी रास्ता बदल सकने वाली तकनीक से लैस है। मंगलवार के परीक्षण में इसने सतह से वार करने के सभी मापदंडों को पूरा किया।

स्वदेशी तकनीक से लैस है ब्रह्मोस

ब्रह्मोस को भारत के डीआरडीओ और रूस के एनपीओएम ने संयुक्त रूप से विकसित किया है। ब्रह्मोस दुनिया में अपनी तरह की इकलौती क्रूज मिसाइल है, जो सुपरसॉनिक स्पीड से दागी जा सकती है। भारतीय सेना के तीनों अंगों के लिए ब्रह्मोस मिसाइल के अलग-अलग संस्करण बनाए गए हैं। थल सेना, वायु सेना और नौसेना की जरूरतों के हिसाब से ब्रह्मोस को अलग-अलग उद्देश्यों के लिए तैयार किया गया है। ब्रह्मोस को दुनिया की सबसे तेज़ सुपरसोनिक मिसाइल माना जा रहा है क्योंकि इसकी रफ़्तार 2.8 मैक यानि ध्वनि की रफ़्तार से लगभग तीन गुना ज्यादा है। दुश्मन की सीमा में घुसकर लक्ष्य भेदने में सक्षम ब्रह्मोस मिसाइल इसी गति से हमला करने में सक्षम है।

गेम चेंजर साबित हो सकती है ब्रह्मोस

ब्रह्मोस की रेंज अभी लगभग 300 किलोमीटर है, जिससे युद्द के समय पडोसी देश में हर जगह प्रहार करना संभव नहीं है। भारत के पास नई जेनरेशन की ब्रह्मोस मिसाइल से अधिक रेंज की बैलेस्टिक मिसाइल हैं, लेकिन ब्रह्मोस की खूबी यह है कि उससे खास टारगेट को तबाह किया जा सकता है। यह पाकिस्तान के साथ किसी टकराव की सूरत में गेम चेंजर साबित हो सकती है। बैलेस्टिक मिसाइल को आधी दूरी तक ही ही गाइड किया जा सकता है। इसके बाद की दूरी वे ग्रैविटी की मदद से तय करती हैं। वहीं क्रूज मिसाइल की पूरी रेंज गाइडेड होती है। ब्रह्मोस क्रूज मिसाइल है। यह बिना पायलट वाले लड़ाकू विमान की तरह होगी, जिसे बीच रास्ते में भी कंट्रोल किया जा सकता है। इसे किसी भी ऐंगल से अटैक के लिए प्रोग्राम किया जा सकता है। यह दुश्मन के मिसाइल डिफेंस सिस्टम से बचते हुए उसकी सीमा के अंदर घुसकर ठिकानों को तबाह करने का दमखम

राजस्थान मेवाड़ यूनिवर्सिटी के उपनिदेशक शशांक द्विवेदी 'टेक्नीकल टुडे' नामक पत्रिका का संपादन कर रहे हैं। वे विगत दो दशकों से विज्ञान संचारक और विज्ञान लेखन के रूप में भी कार्य कर रहे हैं। देश के प्रतिष्ठित विज्ञान पत्रिकाओं में आपके लेख नियमित रूप से प्रकाशित एवं चर्चित हुए हैं।

रखती है। मिसाल के लिए, ब्रह्मोस से पहाड़ी इलाकों में बने आतंकवादी कैंपों को निशाना बनाया जा सकता है, जहाँ पारंपरिक तरीकों से असरदार हमले नहीं किए जा सकते। इसकी खासियत यह भी है कि यह मिसाइल आम मिसाइलों के विपरित हवा को खींच कर रेमजेट तकनीक से ऊर्जा प्राप्त करती है।

अमेरिका की टॉमहॉक मिसाइल से बेहतर

मिसाइल तकनीक में दुनियाँ की कोई भी दूसरी मिसाइल तेज गति से आक्रमण के मामले में ब्रह्मोस की बराबरी नहीं कर सकती है। इसकी खूबियां इसे दुनिया की सबसे तेज़ मारक मिसाइल बनाती है। यहां तक की अमरीका की टॉम हॉक मिसाइल भी इसके आगे फेल साबित होती है। ब्रह्मोस की सफलता का ऑकलन इस बात से भी लगाया जा सकता है कि भारत अब दूसरे देशों को बेचने की दिशा में काम कर रहा है। ब्रह्मोस बनाने वाली कंपनी ब्रह्मोस एयर प्रोग्राम कंपनी को करीब सात अरब डॉलर के घरेलू ऑर्डर मिल चुके हैं। यहाँ पर ध्यान देने वाली बात यह भी है कि अंतरराष्ट्रीय समझौतों के चलते 2016 से पहले इनका निर्यात नहीं किया जा सकता था, लेकिन एमसीटीआर (मिसाइल टेक्नॉलॉजी कंट्रोल रिजाइम) में शामिल होने के बाद भारत को इनकी खरीद-फरोख्त का अधिकार मिल चुका है। इंडो-रसियन संयुक्त उपक्रम के तहत इसकी शुरुआत 1998 में हुई थी।

क्या होती है क्रूज मिसाइल

ब्रह्मोस एक सुपरसॉनिक क्रूज मिसाइल है। क्रूज मिसाइल उसे कहते हैं जो कम ऊँचाई पर तेजी से उड़ान भरती है और इस तरह से रडार से बची रहती है। ब्रह्मोस की विशेषता यह है कि इसे जमीन से, हवा से, पनडुब्बी से, युद्धपोत से यानी कि कहीं से भी दागा जा सकता है। यही नहीं इस मिसाइल को पारम्परिक प्रक्षेपक के अलावा उर्ध्वगामी यानी कि वर्टिकल प्रक्षेपक से भी दागा जा सकता है। ब्रह्मोस के मेनुवरेबल संस्करण का हाल ही में सफल परीक्षण किया गया। जिससे इस मिसाइल की मारक क्षमता में और भी बढोत्तरी हुई है। ब्रह्मोस मिसाइल आवाज की गति से लगभग 3 गुना ज्यादा यानि 2 'ट्रायड' क्षमता वाली मिसाइल भारत और रूस के संयुक्त उपक्रम से तैयार हुई इस मिसाइल का जल और थल से पहले भी सफल परीक्षण किया जा चुका है। इस तरह यह तय

हो गया है कि ब्रह्मोस जल, थल और वायु से छोड़ी जा सकने वाली मिसाइल बन गई है। इस क्षमता को ट्रायड कहा जाता है, ट्रायड की विश्वसनीय क्षमता इससे पहले सिर्फ़ अमरीका, रूस और सीमित रूप से फ्रांस के पास मौजूद है। रक्षा विशेषज्ञों के अनुसार ब्रह्मोस जैसी क्षमता वाली मिसाइल भारत के पड़ोसी देश चीन और पाकिस्तान के पास भी नहीं है। अधिकतम स्वदेशी उपकरणों से लैस ब्रह्मोस के नए संस्करण का इस्तेमाल थल सेना करती है। ब्रह्मोस मिसाइल को हवा, जमीन या समुद्र में मौजूद प्लेटफॉर्म से दागा जा सकता है। ब्रह्मोस को भारत की तरफ से डीआरडीओ और रूस की तरफ से एनपीओएम ने संयुक्त रूप से विकसित किया है। ब्रह्मोस दुनिया में अपनी तरह की इकलौती क्रूज मिसाइल है, जो सुपरसॉनिक स्पीड से दागी जा सकती है। भारतीय सेना के तीनों अंग ब्रह्मोस मिसाइल के अलग-अलग संस्करण इस्तेमाल करते हैं। थल सेना, वायु सेना और नौ सेना की जरूरतों के हिसाब से ब्रह्मोस को अलग-अलग उद्देश्यों के लिए तैयार किया गया है। मैन पोर्टेबल एंटी टैंक गाइडेड मिसाइल प्रणाली का तीसरा सफल परीक्षण था, जिसे भारतीय सेना की तीसरी पीढ़ी के एंटी टैंक गाइडेड मिसाइल की आवश्यकता के लिए विकसित किया जा रहा है।

वैसे, अब ब्रह्मोस को ज़मीन, समुद्र तथा हवा कहीं से भी चलाया जा सकता है। हवा से जमीन पर मार करने वाले ब्रह्मोस मिसाइल का दुश्मन देश की सीमा में स्थापित आतंकी ठिकानों पर हमला बोलने के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है। यह मिसाइल अंडरग्राउंड परमाणु बंकरों, कमांड ऐंड कंट्रोल सेंटर्स और समुद्र के ऊपर उड़ रहे एयरक्राफ्ट्स को दूर से ही निशाना बनाने में भी सक्षम है। बीते एक दशक में सेना ने 290 किलोमीटर की रेंज में जमीन पर मार करने वाली ब्रह्मोस मिसाइल को पहले ही अपने बेड़े में शामिल कर लिया है।

ब्रह्मोस मिसाइल का देशी बूस्टर

पुणे में स्थित डिफेंस रिसर्च ऐंड डिवेलपमेंट ऑर्गनाइजेशन(डीआरडीओ) की हाई एनर्जी मैटरियल्स रिसर्च लैबोरेटरी यूनिट ने ब्रह्मोस सुपरसोनिक क्रूज मिसाइल का देशी बूस्टर डिवेलप किया है। डीआरडीओ के विशेषज्ञों ने इस बूस्टर की महत्ता का जिक्र करते हुए बताया, एक ब्रह्मोस मिसाइल 2 स्टेज में फायर होता है। पहले स्टेज में एक सॉलिड प्रॉपेलेन्ट बूस्टर, मिसाइल को सुपरसोनिक स्पीड से धक्का देता है और फिर अलग हो जाता है। इसके बाद दूसरे स्टेज में लिक्विड फ्यूल इंजिन, इसको ध्वनि की गति की 3 गुना गति दे देता है। भारत अभी तक रूस से ही बूस्टर को आयात करता था। इस देशी तकनीक से देश के पैसों की भी बचत होगी।

ब्रह्मोस के निर्यात की भी तैयारी

इस कामयाबी के बाद भारत दुनिया में स्वयं को एक महाशक्ति के रूप में स्थापित करने में भी सफल हुआ है। भारत इस मिसाइल के निर्यात की दिशा में आगे बढ़ने की तैयारी में लग गया है। एमटीसीआर का सदस्य बनने के बाद यह कार्य और आसान हो गया है। वियतनाम 2011 से इस तेज गति की मिसाइल को खरीदने की कोशिश में लगा हुआ है। वह चीन से बचाव के लिए ब्रह्मोस क्रूज मिसाइल लेना चाहता है। इस अत्याधुनिक मिसाइल को बेचने के लिए भारत की नजर में वियतनाम के अतिरिक्त 15 अन्य देश भी हैं। वियतनाम के बाद फिलहाल जिन चार देशों से बिक्री की बातचीत चल रही है उनमें इंडोनेशिया, दक्षिण अफ्रीका, चिली व ब्राजील हैं। शेष 11 देशों की सूची में फिलीपींस, मलेशिया, थाईलैंड व संयुक्त अरब अमीरात आदि शामिल हैं। इन सभी देशों के साथ दक्षिण चीन सागर मसले पर चीन के साथ तनातनी चल रही है। दुनिया की सबसे तेज गति वाली मिसाइलों में शामिल ब्रह्मोस मिसाइल सर्वाधिक खतरनाक एवं प्रभावी शस्त्र प्रणाली है। यह न तो राडार की पकड़ में आती है और न ही दुश्मन इसे बीच में भेद सकता है। एक बार दागने के बाद लक्ष्य की तरफ बढ़ती इस मिसाइल को किसी भी अन्य मिसाइल या हथियार प्रणाली से रोक पाना असंभव है।

कुल मिलाकर भारत ने सुपरसोनिक क्रूज मिसाइल ब्रह्मोस का सफल परीक्षण एक बड़ी कामयाबी है। इस कामयाबी से भारत की सामरिक क्षमता में बड़े पैमाने पर वृद्धि होगी।

dwivedi.shashank15@gmail.com

संजीवनी बूटी के खुलते रहस्य

प्रमोद भार्गव

लेह-लद्दाख में सैनिकों और स्थानीय लोगों की प्रतिरोधात्मक क्षमता को बढ़ाने वाले 'सोलो' पौधे को गुरुनानक देव विश्वविद्यालय के जैव-प्रौद्योगिकी विभाग ने नया जीवन दिया है। इस विभाग ने लेह-लद्दाख के दुर्गम क्षेत्रों में पाए जाने वाले सोलो नामक पौधे का 'टिश्यू प्लांट' (बेबी ट्यूब प्लांट) तैयार किया है। इसका वैज्ञानिक नाम 'रोडियोला' है। इसके गुणों के कारण और इसके प्रायोगिक परीक्षणों से यह माना जा रहा है कि संभवतः यही त्रेता युग की वह संजीवनी बूटी है, जिसका उल्लेख 'रामायण' में संजीवनी बूटी के मान से है। इसका उपयोग इन क्षेत्रों में ऑक्सीजन अर्थात प्राणवायु बढ़ाने, बढ़ती उम्र के प्रभाव को कम करने कम वायु दबाव वाले क्षेत्रों में रहने और बम या जैव रसायन से पैदा हुए विकीरण के प्रभाव को खत्म करने के लिए किया जाता है। यह बूटी शरीर को सीधे ऑक्सीजन ही नहीं देती, वरण उसकी प्रतिरोधक क्षमता भी बढ़ा देती है। इसके प्रयोग से कम ऑक्सीजन वाले इलाकों में भी सैनिक व स्थानीय रहवासी आराम से रह लेते है। चिंता की बात यह है कि यह बूटी भारत में लुप्त होने के कगार पर हैं।

लद्दाख का वातावरण सोलो पौधे के अनुकूल है। यह 15 से 18 हजार फीट की ऊँचाई पर पैदा होता है। अभी इसकी तीन प्रजातियों की पहचान हुई है। ये हैं, सोलो कारपो (सफेद), सोलो मारपो (लाल) और सोलो सेरपो (पीला) हैं। सफेद सोलो का मुख्य रूप से औषधीय उद्देश्य से प्रयोग किया जाता है। जीएनडीयू के जैव तकनीक के विभागाध्यक्ष डॉ. प्रताप कुमार का कहना है कि इस पौधे को तैयार करने के लिए प्रयोगशाला में लेह-लद्दाख जैसा ऋणात्मक 20 डिग्री सेल्सियस तक तापमान रखा गया। धूल रहित प्रयोगशाला में पौधे को करीब तीन साल तक पोषक तत्व दिए जाते रहे। तब कहीं जाकर यह पौधा पनपकर पल्लवित-पुष्पवित हुआ। भारत के आलावा यह साईबेरिया में भी पाया जाता है। डॉ. कुमार का कहना है कि ऐसी अंचल में मान्यता है कि राम-रावण युद्ध में जब लक्ष्मण मूर्छित हो गए थे, तब इसी बूटी से उनका उपचार कर प्राण बचाए गए थे, हालांकि अभी यह स्पष्ट नहीं हुआ है कि यही पौधा संजीवनी बूटी है। इस पौधे के पत्तो तुलसी के पत्तों की तरह होते है। इन्हें तोड़कर चबा लिया जाता है। चाय में भी इन पत्तों को डालकर पीते है। यहाँ के स्थानीय निवासी इसका प्रयोग चिंता, थकान और अवसाद दूर करने के लिए भी करते है। अब इस पौधे को ऊतक पौधे के रूप में तैयार कर लिए जाने से यह चिंता दूर हो गई है कि भविष्य में यह पौधा लुप्त हो जाएगा।

हमारे प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में मृत-संजीवनी बूटी अर्थात मृत और मूर्च्छित व्यक्ति में नए सिरे से प्राण डालने वाली जड़ी-बूटी या इन औषधीय पौधों के रस का वर्णन है। सतयुग, त्रेता और द्वापर युगों में इस उपचार से संबंधित चार वनस्पतियाँ प्रचलन में थीं। मृत-संजीवनी अर्थात मरे हुए की जिलाने वाली बूटी। इसकी गंध-मात्र से ही मृत व्यक्ति जी उठता था। विशाल्यकरणी, यानी बाण निकालने वाली बूटी। इस बूटी से शरीर में धंसे बाण निकाले जाते थे। व्रणरोपणी के लेप से घाव सूख जाते थे। सवर्ण्यकरणी (संरोहिणी) त्वचा पर आए घाव के निशान मिटाने वाली वनस्पति थी। ज्ञातव्य है, ये वनस्पतियाँ यह संकेत देती हैं कि उन कालखंडों में ऐसे पौधे थे, जिनमें जीवनदायी गुण अंतर्निहित थे। इन्हें हम इन विलक्षण गुणों से जुड़े पौधों का समूह भी कह सकते हैं। जैसे कि सोलो और उसके समूह लद्दाख में पाए जाते हैं।

प्रमोद भार्गव एक पत्रकार और विज्ञान संचारक के रूप में देशभर में जाने जाते हैं वहीं उनका दूसरा पक्ष एक लोकप्रिय कथाकार का भी है। समकालीन परिदृश्य और समसामयिक विषयों जिनमें विज्ञान भी शामिल है, पर प्रमोद भार्गव की गहरी नज़र रहती है। वे तात्कालिक विज्ञान-अनुसंधान और हलचल पर लिखने के लिये खासे चर्चित हैं। प्रमोद भार्गव म.प्र. के शिवपुरी में निवास करते हैं।

हमारी प्राचीन भारतीय पारंपरिक चिकित्सा प्रणाली समरूपता के सिद्धांत के अनुसार काम करती रही है। इस सिद्धांत से आशय है कि जिस पौधे की संरचना यानी बनावट शरीर के जिस अंग के समान हो, वह उससे संबंधित रोग का उपचार कर सकता है। प्रकृति ने शरीर के अंगों के प्रकार की वनस्पतियाँ व फल बनाए हुए हैं। यदि सिर को मजबूत बनाए रखना चाहते हैं तो इस हेतु जटाधारी नारियल उपयुक्त फल है। इसी तरह आँखों के लिए बादाम, कानों के लिए अखरोट, दाँतों के लिए अनार, पलकों के लिए केशर, हृदय के लिए तरबूज, पिंजर के लिए संतरा, गुर्दों के लिए खरबूजा, तिल्ली के लिए अंजीर, जिगर के लिए गाजर, अण्डकोशों के लिए नींबू, अंतड़ियों के लिए बेल, हड्डियों के लिए हड़जुड़ी और कब्ज के लिए पपीता। साफ है, प्रकृति और मानव का परस्पर गहरा संबंध है। इसी तरह हिमालय में नारी-लता नामक पौधा पाया जाता है, जिसमें चार साल में एक बार फूल खिलते हैं। ये हूबहू स्त्री के आकार के होते हैं। हालांकि इनका रंग एकदम गहरा हरा होता है। इस फूल का सेवन स्त्री के लिए स्वास्थ्य व सौंदर्यवर्धक है।

25 अगस्त 2009 के 'करंट साइंस' में एक शोध लेख छपा है। जिसे कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय बैंग्लुरू और वानिकी महाविद्यालय सिरसी के डॉ के एन गणेशैया, डॉ आर वासुदेव और डॉ.आर उमाशंकर के संयुक्त अनुसंधान के प्रतिफल रूवरूप तैयार किया है। इसी का सार विज्ञान लेखक डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन ने भोपाल से प्रकाशित स्रोत पत्रिका में दिया है। इन तीनों संजीवनी की सच्चाई जानने के लिए 'भारतीय जैव संसाधन डाटाबेस लायब्रेरी' में 80 भाषाओं व बोलियों में अधिकतम भारतीय पौधों के बोल-चाल के नामों की खोज की है। संजीवनी शब्द व उसके पर्यायवाची तथा मिलते-जुलते शब्दों को भी तलाशा है। परिणामतः 17 प्रजातियों के नाम सामने आए। जब विभिन्न भाषाओं में इन शब्दों के उपयोग की तुलना की गई तो मात्र छह प्रजातियां शेष रह गईं। इनका गहन परीक्षण करने पर पाया कि तीन प्रजातियां ही ऐसी हैं, जो संजीवनी या उससे मिलते-जुलते शब्द से अधिकतम एकरूपता रखती हैं। ये हैं, क्रेसा क्रेटिका, सिलेजिनेला ब्रायोप्टेरिस और डेस्मोट्रायकमफिम्ब्रिएटम। इनके हिंदी नाम हैं, रुवन्ती, संजीवनी बूटी और जीविका।

इनमें सिलोजिनेला ब्रायोप्टेरिस अर्थात संजीवनी-बूटी ऐसी वनस्पति है, जो कई महीनों तक शुष्क व सूखी अवस्था में पड़ी रहती है। इस मृत व निष्क्रिय पड़ी रहने वाली वनस्पति की विलक्षणता यह है कि इसे पानी से भिगो दिए जाने पर यह इस आश्चर्यजनक ढंग से पुनर्जीवित व हरी-भरी हो उठती है कि लगता नहीं कि कुछ समय पहले तक यह सूखी लकड़ी थी। यह जड़ी समरूपता के उस सिद्धांत का भी अनुकरण करती हैं, जो हमारी ज्ञान परंपरा की धरोहर है।

ग्वालियर के डॉ.एन.के.शाह ने हैदराबाद विश्व विद्यालय के डॉ. शर्मिष्ठा बनर्जी और सैयद हुसैन के साथ मिलकर जीव व वनस्पति विज्ञान की आधुनिक तकनीकों का उपयोग करते हुए सिलेजिनेला ब्रायोप्टेरिस पर कुछ प्रयोग करते हुए इसमें पुनर्जीवन के आधारभूत तत्वों की खोज की है। इन तकनीकों में जैव रासायानिक व कोशिका जीव विज्ञान की विधियां शामिल हैं। इन शोधकर्ताओं के अनुसंधान से पता चलता है कि जो ऑक्सीकरण यानी प्राणवायु संबंधी क्षति व पराबैंगनी क्षति से चूहों और कीटों की कोशिकाओं की रक्षा करते हैं, उनकी मरम्मत में यह बूटी मदद करती है। इस क्रिया में ऑक्सीकारक व पराबैंगनी दोनों तरह की क्षतियां तंत्रिकाओं को प्रभावित करती हैं। गोया, मानना पड़ेगा कि संजीवनी-बूटी थी ?

सुषेण वैद्य के परामर्श पर जब हनुमान संजीवनी लेने के लिए हिमालय पर्वत पहुँचे, तब उन्हें वहाँ से चमकने वाली औषधि लाने को कहा गया था, लेकिन वहां भिन्न-भिन्न प्रकार की अनेक औषधियां प्रकाशित हो रही थीं। इसलिए वे हिमालय का वह भूखंड उठा लाए, जिसमें पौधे चमक रहे थे। सुषेण ने तुरंत संजीवनी का रस निकालकर लक्ष्मण को सेवन कराया, इसके तत्काल प्रभाव से मूर्च्छित लक्ष्मण होश में आ गए।

2 जनवरी 1983 के 'धर्मयुग' में वैद्य सुरेश चतुर्वेदी के लिखे आलेख में भी 'संजीवनी का चमत्कार' की जानकारी दी गई है। वैद्य सूरेश को जादव गुरू नाम के व्यक्ति अँधेरी रात

Selaginella Bryopteris
Sanjeevani Booti

सुषेण वैद्य के परामर्श पर जब हनुमान संजीवनी लेने के लिए हिमालय पर्वत पहुँचे, तब उन्हें वहां से चमकने वाली औषधि लाने को कहा गया था, लेकिन वहां भिन्न-भिन्न प्रकार की अनेक औषधियां प्रकाशित हो रही थीं। इसलिए वे हिमालय का वह भूखंड उठा लाए, जिसमें पौधे चमक रहे थे। सुषेण ने तुरंत संजीवनी का रस निकालकर लक्ष्मण को सेवन कराया, इसके तत्काल प्रभाव से मूर्च्छित लक्ष्मण होश में आ गए।

प्राचीन कथाओं में संजीवनी बूटी

संजीवनी विद्या या बूटी के प्रभाव से मृत्यु को प्राप्त हो गए लोगों को पुनर्जीवित करने के तीन प्रसंग हमारे प्राचीन ग्रंथों में प्रमुख रूप से प्रचलित हैं। पहला प्रसंग कच-देवयानी की अंतर्कथा से जुड़ा है। हम सब देवासुर संग्राम से बखूबी परिचित है। इस संग्राम में विजय पाने के लिए देवों ने बृहस्पति और दानवों ने शुक्राचार्य को अपना पुरोहित बनाया था। इन दोनों पुरोहितों में जबरदस्त ईर्ष्या व वैमनस्य था। देवता युद्ध में जिन भी असुरों को मारते, शुक्राचार्य उन्हें अपनी संजीवनी विद्या से पुनर्जीवित कर देते थे। इस विद्या में दक्ष गुरू बृहस्पति नहीं थे। इसलिए देवताओं को पराजय का मुख देखना पड़ा। आगे युद्ध की रणनीति बनाने की दृष्टि से देवताओं ने बृहस्पति के पुत्र कच को शुक्राचार्य के पास संजीवनी विद्या सीखने के लिए भेज दिया। ब्रह्मचर्य व्रत धारण किए हुए कच ने मृतसंजीवनी विद्या सीख ली। जब दानवों के समक्ष यह भेद खुला कि कच देवों के गुरू बृहस्पति का पुत्र है तो उन्होंने जंगल में गाएँ चराते हुए कच की हत्या कर दी। किंतु पुत्री देवयानी के कहने पर शुक्राचार्य ने उसे जीवित कर दिया। इस बीच देवयानी कच को प्रेम करने लगी थी और उसके सामने पाणिग्रहण कर लेने का प्रस्ताव भी रखा था, किंतु कच ने देवयानी के गुरू-पुत्री होने के कारण बहिन माना और प्रस्ताव ठुकरा दिया।

दूसरा प्रसंग भगवान परशुराम द्वारा पिता जमदग्नि के कहने पर अपनी माँ और भाइयों को मार देने और फिर जमदग्नि द्वारा संजीवनी विद्या से पुनर्जीवित करने का है। तीसरी कथा रामायण काल से जुड़ी है। रावण-पुत्र मेघनाद द्वारा राम के अनुज लक्ष्मण को अमोघ शक्ति से मूर्च्छित कर दिया जाता है। तब लंका के वैद्य सुषेण को बुलाया गया। सुषेण ने रोगी लक्ष्मण का परीक्षण कर, उपचार का उपाय द्रोणगिरी पर्वत से मृत संजीवनी बूटी लाकर खिलाना बताया। बाद में हनुमान इस बूटी को लाए और लक्ष्मण के प्राण बच गए।

इन तीनों प्रसंगों से स्पष्ट है कि संजीवनी विद्या और बूटी प्राचीन युग में मृतकों को पुनर्जीवन देने वाली अद्‌भुत विद्या थी। महर्षि वाल्मीकि और वेदव्यास ने जिस अलौकिक व अलंकारिक शैली में इस वनस्पति का वर्णन किया है, उससे यह अधिकांश को काल्पनिक लगती है, क्योंकि इन ग्रंथों में इस विद्या का स्वरूप वर्णन नहीं है। लेकिन यह विद्या और वनस्पति अस्तित्व में थे, इसका ज्ञान अब वर्तमान शोधों से स्पष्ट होने लगा है।

में चमकने वाली एक दिव्य वनस्पति दे गए थे। उन्हें यह जड़ी सहयाद्री पर्वतमाला में भीमाशंकर ज्योर्तिलिंग के घने वनखंड में मिली थी। इस शुष्क व सूखी लकड़ी की विलक्षणता यह थी कि घनीभूत अँधेरे में इस जड़ी को गीला करने पर यह प्रकाश-पुँज से प्रस्फुटित हो पड़ती थी। इस समय यह रेडियम-घड़ी की तरह लगती थी।

आयुर्वेद शास्त्र में ऐसी अनेक चमकने वाली दिव्य औषधियों का वर्णन है, जो संजीवनी-बूटी से मेल खाती हैं। इनमें सोम, महासोम, चंद्रमा, अंशुमान, मंजुवान, रजतप्रभ, दूर्वा कनियान, श्वेतमान, कनकप्रभ, प्रतानवान, लालवृत्त, करवीर, अंरमान, स्वयंप्रभ, गुरूद्राक्ष, गायत्र, एष्टम, पावत, जागत, शाकर, रैक्त, अनिष्टम् और त्रिपदागायत्री। वैद्य सुरेश को जो संजीवनी प्राप्त हुई, उसे उन्होंने सोम औषधि माना है। यह एक पौधा होता है। इसमें शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा को एक पत्ता प्रस्फुटित होता है। दूज को दो, तीज को तीन, इस तरह पूर्णिमा तक पौधे में 15 पत्ते उग आते हैं। इसके बाद विपरीत चक्र चलता है। कृष्ण-पक्ष की प्रतिपदा से क्रमशः एक-एक पत्ता प्रतिदिन

झड़ने लगता है। अमावस्या के दिन यह पौधा सूखी लकड़ी भर रह जाता है।

आयुर्वेद में सूखी लकड़ी भर रह गई इस चमात्कारिक वनस्पति के बड़े गुण बताए हैं,

अणिमा, गणिमा, लधिमा, प्राप्तिः प्रकाम्यं महिता यथा।
ईशित्वं च वशित्वं च तथा कामा बसमिता।।

बंधुओं, ये आठ ऐश्वर्य हैं, जिन्हें प्राप्त कर व्यक्ति देव श्रेणी में पहुँच जाता है। इसके प्रभाव से व्यक्ति पर अग्नि, जल, विष और अस्त्र के दुष्प्रभाव नहीं पड़ते। प्राचीन काल में अधिकांश ऋषि-मुनि, महात्मा, देव व राक्षस गण सोम और इसी तरह की अन्य दुर्लभ औषधियों का सेवन करके शक्तिशाली व दीर्घजीवी बने रहते थे। ये तंत्रिका-तंत्र और हड्डियों को तो सुदृढ़ रखती ही थीं, नेत्र ज्योति को तेज और श्रवण व घ्राण शक्ति को भी क्षिप्र बनाए रखती थीं। यही वे औषधियाँ थीं, जो क्षतिग्रस्त कोशिकाओं को पुनर्जीवन देती थीं। इसीलिए इन्हें मृत-संजीवनी-बूटी कहा गया है। इन चमत्कारी औषधियों का हिमालय और सहयाद्रि पर्वत श्रृंखलाओं के अलावा महेन्द्र, मल्लिकार्जुन, देवगिरि, श्रीपर्वत एंव क्षुद्रक मानसरोवर, सिंधु नदी के उद्‌गम स्थल पर थोड़ा-बहुत अस्वित्व बचा हुआ है। किंतु प्राकृतिक संपदा को जिस तरह से हम निचोड़ने में लगे हैं, उसके चलते ये निरंतर दुर्लभ होती जा रही हैं। बहरहाल सोलो बूटी का प्रयोगशाला में ऊतक पौधे के रूप में उत्पादन इसके सरंक्षण की दिशा में एक बड़ी पहल है।

pramod.bhargava15@gmail.com

फेसबुक

सीरत पर सूरत की फतह का जश्न

कुणाल सिंह

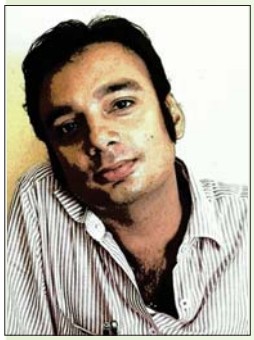

कुणाल सिंह हिन्दी के जाने-माने कथाकार। कहानियों की दो किताबें और एक उपन्यास प्रकाशित। ज्ञानपीठ नवलेखन पुरस्कार व साहित्य अकादेमी युवा पुरस्कार से सम्मानित। वर्तमान में आप सी-3, 304, सौम्य पर्फॉर्च्यून हेरिटेज, आईपीएस के निकट, मिसरोद, भोपाल में निवासरत हैं।

पुराने समय से ही सूरत के ऊपर सीरत को तरजीह देने का चलन रहा है। '...चेहरे ने लाखों को लूटा, दिल सच्चा और चेहरा झूठा' से लेकर 'चेहरा क्या देखते हो, दिल में उतरकर देखो न' जैसे लोकप्रिय मुखड़े इसी को सत्यापित करते हैं। पौराणिक सन्दर्भों में भी भेष बदलकर ही तमाम कुकृत्यों को अंजाम दिया जाता था, चाहे सीता-हरण हो या अहिल्या का सतीत्व-भंग। सामाजिक व्यवहार में रूपवान के ऊपर गुणवान को श्रेयस्कर ठहराया जाता था। माना जाता था कि रूप क्षणिक है, गुण स्थायी।

लेकिन आज के सामाजिक व्यवहार में ऊपरी चकाचौंध और तामझाम का भी अपना एक मूल्य स्थापित हो चुका है। रूप तत्काल प्रभावित करता है, गुण की प्रभावान्विति धीमी होती है। आज के समय में रूप के इस त्वरित प्रभाव (इम्प्रेशन) का बड़ा ही महत्त्व है। 'इम्प्रेशन' में हालाँकि महज रूप की ही गणना नहीं होती; व्यवहार कुशलता, प्रत्युत्पन्नमति या हाजिर जवाबी, हास्यबोध आदि का भी इसमें समुचित योग होता है, किन्तु मुहावरे में जिस 'फर्स्ट इम्प्रेशन' को ही अन्तिम प्रभाव के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है, उसमें रूप का प्रतिशत ही अधिक है।

'फेसबुक' की मूल अवधारणा के पीछे, और इसके नामकरण के पीछे भी ऊपरी 'लुक' अथवा 'फेस' की निर्णायक भूमिका है। साल 2004 में जब फेसबुक का जन्म हुआ था, हमने इस सोशल नेटवर्किंग साइट का उपयोग करने वालों के मुख से सुना होगा, कि फेसबुक पुराने मित्रों को मिलाता है। वर्षों पहले के दोस्त, जिनसे हमारा सम्पर्क टूट चुका था, उन्हें हमने फेसबुक के जरिए ढूँढ़ा। भारत में आरम्भिक पाँच-छह साल तक फेसबुक ने मूल रूप से इसी एक काम को अंजाम दिया, अथवा कहें कि फेसबुक यूजर्स इस प्लेटफॉर्म पर मुख्यतः मिलने-मिलाने के उद्देश्य से ही आते रहे। आज भी ऐसे लोगों की कमी नहीं, जो फेसबुक पर महज दोस्तों से गुफ्तगू करने, उनकी वर्षगाँठ पर बधाइयाँ देने, उनकी तस्वीरों को 'लाइक' करने, उस पर कमेंट करने अथवा उन्हें शेयर करने आदि के लिए यहाँ बने हुए हैं।

साधारण यूजर इस गहरे स्तर पर उतरकर देखता ही नहीं कि फेसबुक अपने यूजर्स द्वारा प्रदान की गयीं सूचनाओं से लगाकर उनकी लैंगिक पहचान व तदनुरूप उनकी अभिरुचियों, उनकी धार्मिक आस्थाओं, उनके राजनीतिक विचारों व रुझान आदि के अपने स्टोरेज को व्यापारिक एसेट्स के रूप में इस्तेमाल करता आया है। उस पर अपने डेटा को बेचने का इल्जाम लग चुका है। सचाई यह है कि लोग चाहे अपनी प्राइवेसी सेटिंग कुछ भी रखें, फेसबुक तथा इस प्रकार के सोशल नेटवर्विंफग साइट्स पर ये जानकारियाँ स्टोर की जाती हैं तथा बाद में इन्हें ऊँचे दरों पर विज्ञापनदाताओं को बेचा जाता है।

फेसबुक तथा अन्यान्य सोशल नेटवर्विंफग साइट्स के इस स्याह पक्ष पर फिर कभी विस्तार से टिप्पणी की जाएगी, फिलहाल इस आलेख में इसके मूल चरित्रा, अर्थात् सूचना संचार के रूप में इसकी भूमिका पर कुछ बातें। इसकी संरचना पर गौर करें तो फेसबुक सबसे पहले अपने यूजर्स को एक निजी पृष्ठ उपलब्ध कराता है जिसे 'वॉल' कहा जाता है। यह यूजर का अपना पन्ना है जिस पर

इन सारी गतिविधियों को गौर से देखें तो ये किसी भी यूजर के अहं (ego) को तुष्ट करती हैं। अपना एक स्थायी पन्ना जहाँ बेझिझक अपने मन की बातें लिखी जा सकती हैं, अपनी रचनाएँ प्रकाशित की जा सकती हैं, अपनी तस्वीरें टाँकी जा सकती हैं, अपनी मित्रा-सूची को मनोनुकूल नियन्त्रित किया जा सकता है- ये सारी बातें यूजर को प्रगल्भ बनाती हैं। हमने देखा होगा कि फेसबुक पर यदि आप किसी के पोस्ट पर उसकी अपेक्षा के अनुरूप टिप्पणी नहीं करते हैं, तो वह आपको झिड़क देता है, कहता है कि यदि उसका पोस्ट आपको पसन्द नहीं तो कृपया अन्यत्रा जाएँ। अर्थात् वैचारिक भिन्नता को वह कतई स्पेस नहीं देता। उसकी यह प्रगल्भता उसे असहिष्णु बनाती है और वह विपरीत टिप्पणियों को बर्दाश्त नहीं करता।

उसकी टिप्पणियाँ अथवा उसको सम्बोधित अन्य यूजर्स की टिप्पणियाँ संकलित रहती हैं। इन टिप्पणियों को 'पोस्ट' कहा जाता है। फेसबुक यूजर्स का यह वॉल पूरी तरह से मैनेजेबल रहता है, अर्थात यूजर्स को इस बात की छूट रहती है कि फेसबुक पेज की संरचनात्मक बनावट अथवा ले-आउट को अक्षुण्ण रखते हुए वह अपने वॉल को अपने मुताबिक रखे। ध्यान रहे कि इस पन्ने पर अभिव्यक्ति की पूर्ण आजादी है, यदि कोई सेंसर काम भी करता है तो यह बहुत लचीला है। अमूमन यूजर्स का अपना अवचेतन ही यहाँ 'सम्पादक' जैसे फेनोमिना का संवाहक होता है। वह जब चाहे अपने पोस्ट को रख सकता है, हटा सकता है, उसकी पहुँच को दूसरों के लिए उपलब्ध करा सकता है अथवा इसकी उपलब्धता को कुछ लोगों तक सीमित भी कर सकता है। इसके अलावा वह अपने पोस्ट को कुछ अन्य लोगों के साथ 'टैग' भी कर सकता है। दूसरों के वॉल पर जाकर पोस्ट या टिप्पणी कर सकता है, फोटो शेयर कर सकता है।

इन सारी गतिविधियों को गौर से देखें तो ये किसी भी यूजर के अहं (ego) को तुष्ट करती हैं। अपना एक स्थायी पन्ना जहाँ बेझिझक अपने मन की बातें लिखी जा सकती हैं, अपनी रचनाएँ प्रकाशित की जा सकती हैं, अपनी तस्वीरें टाँकी जा सकती हैं, अपनी मित्रा-सूची को मनोनुकूल नियन्त्रित किया जा सकता है- ये सारी बातें यूजर को प्रगल्भ बनाती हैं। हमने देखा होगा कि फेसबुक पर यदि आप किसी के पोस्ट पर उसकी अपेक्षा के अनुरूप टिप्पणी नहीं करते हैं, तो वह आपको झिड़क देता है, कहता है कि यदि उसका पोस्ट आपको पसन्द नहीं तो कृपया अन्यत्रा जाएँ। अर्थात् वैचारिक भिन्नता को वह कतई स्पेस नहीं देता। उसकी यह प्रगल्भता उसे असहिष्णु बनाती है और वह विपरीत टिप्पणियों को बर्दाश्त नहीं करता। सामान्य तौर पर कम्यूनिकेशन हमें सहिष्णु, सहज और उदार बनाता है, किन्तु फेसबुक ने यूजर्स के अहं को जगाया है। जब-जब इस अहं को किसी प्रकार चोट पहुँचती है, यूजर भड़क जाता है और अपनी भड़ास निकालने के क्रम में गाली-गलौच पर उतर आता है, दूसरों को 'ब्लॉक' कर देता है।

ऊपर कहा गया कि फेसबुक यूजर्स का अपना अवचेतन ही यहाँ सम्पादक की भूमिका में होता है। फेसबुक तथा अन्य सोशल साइट्स ने यह सम्भव कर दिया है कि हम अपने अवचेतन में उभरी किसी भी बात को एक 'पोस्ट' का रूप दे सकते हैं। जरूरी नहीं कि वह पूरी तरह से पका हुआ कोई विचार या रचना हो, वह चलता-पिफरता जुमला, हड़बड़ी में उगा हुआ कोई खयाल या सुनी-सुनायी बात भी हो सकती है। चूँकि फेसबुक हमें यह सुविधा देता है कि हम अपनी बात को बाद में भी 'एडिट' अथवा 'डिलीट' कर सकते हैं, हम किसी भी बात की तह में गये बगैर उसे फौरन अपने वॉल पर टाँक देने की हड़बड़ी में होते हैं।

इस तरह से सामूहिक रूप में शब्दों का 'सेलीब्रेशन' कभी नहीं देखा गया। एक अदद 'हुँह!' या 'उफ!' को ही नहीं, गुडमॉर्निंग या गुडनाइट को भी बाकायदा एक पोस्ट बनाया जा सकता है, उस पर लाइक और कमेंट हासिल किये जा सकते हैं। किसी भी अदने से पोस्ट पर मिलने वाले हजारों लाइक और कमेंट भी हमारे अहं को तुष्ट करते चलते हैं। इसी रोशनी में इसे भी रखा जा सकता है कि हम तत्काल ही अपने मन में जनमी किसी प्रतिक्रिया को दर्ज कर देते हैं। अमूमन इससे पहले 'सम्पादक' कोई बाहरी तत्त्व हुआ करता था, न सही व्यक्ति, बल्कि समाज की सामान्य रीति-नीति भी सम्पादक के दायित्व का निर्वहन किया करती थीं। किसी बात पर उग्र हो जाना, गाली-गलौच करना आदि पर रोक-टोक, सम्पादन का कार्य यही सोशल डेकोरम किया करता था। हम व्यक्तिगत रूप से चाहे कितने भी परेशान व आहत हों, क्रोधित व क्षुब्ध हों, किन्तु किसी

पब्लिक प्लेस पर गालियाँ नहीं निकाल सकते। ऐसा करना किसी खास सामाजिक संरचना में रहते हुए हमें 'शोभा' नहीं देता। फेसबुक हमें अपनी प्रतिक्रिया में पर्सनल व निरंकुश बनाता है। हम 'अपने' वॉल पर जो चाहे कर सकते हैं, का भाव सदा बना रहता है। इसका सोशल स्फीयर आभासी है। यह एक 'वर्चुअल सोसाइटी' का निर्माण करता है जहाँ हमारे 'सोशल इथीक्स' और 'कोड' काम नहीं करते।

इस आभासी समाज में सबकुछ दिखने-दिखाने पर निर्भर करता है। इस दुनिया का आप्तवचन है- जो दिखता है, वही बिकता है। इस सन्दर्भ में फेसबुक की संरचना का एक अहम हिस्सा है- प्रोफाइल पिक्चर। प्रोफाइल पिक्चर के रूप में चस्पाँ हमारी तस्वीर हमारे बारे में इन्फॉर्मेशन क्रिएट कर सकती है, ऐसा फेसबुक जैसे सोशल साइट्स के प्रचलन में आने पर ही सम्भव हुआ। तस्वीरें अब महज गूँगी तस्वीरें नहीं रहीं, वे सूचना का साधन बन चुकी हैं। इन तस्वीरों के माध्यम से हमारी रुचियों व रुझान, हमारी आस्थाओं व पहचान की अभिव्यक्ति होती है। उदाहरण के लिए धार्मिक मनोवृत्ति वाले यूजर्स अपनी तस्वीरों को धार्मिक प्रतीकों से संलग्न करते हैं, किसी धार्मिक स्थल अथवा देवी-देवता या आध्यात्मिक गुरुओं की तस्वीरें, 'नमः शिवाय' या 'राधे-राधे' जैसे स्लोगन अथवा चन्दन-रोली धारण किये स्वयं की तस्वीरें अपलोड करते हैं। राजनीतिक रुझान वाले किसी राजनीतिक पार्टी-विशेष के चित्रों या राजनेताओं की तस्वीरों का प्रयोग करते हैं। कलात्मक अभिरुचियों वाले यूजर्स अपनी तस्वीर की जगह उसके कलात्मक प्रतिरूपों (पोर्ट्रेट आदि) का इस्तेमाल करते देखे जाते हैं तो घर-गृहस्थी को तरजीह देने वालों की तस्वीरों में परिवार के सदस्य अथवा आयोजन आदि का स्थान सुनिश्चित होता है।

इस सन्दर्भ में यह दिलचस्प तथ्य है कि अमेरिका और यूरोप के देशों की बजाय तीसरी दुनिया के देशों में रहने वाले फेसबुक यूजर्स अपने प्रोफाइल पिक्चर के रूप में ऐसी तस्वीरों को वरीयता देते हैं जिनमें उनकी पूरी देहाकृति प्रतिबिम्बित होती है। इसके विपरीत पश्चिमी देशों के यूजर्स ज्यादातर ऐसी तस्वीरों को बतौर प्रोपफाइल पिक्चर चुनते हैं जिनमें उनका चेहरा हावी रहता है। इसी तरह ग्रामीण अंचल या मझोले शहरों से आने वाले यूजर्स की तस्वीरों में बैकग्राउंड के लिए पर्याप्त स्पेस रहता है, जबकि बड़े शहरों या महानगरों में रहने वालों की तस्वीरों में बैकग्राउंड अमूमन न के बराबर होता है, पूरी तस्वीर में उन्हीं का अक्स और उनके क्रियाकलाप (बोलना, सोचना, देखना, हँसना, मुस्कराना आदि) नुमायाँ होते हैं।

स्मार्टफोन के केमरे की मार्फत इन तस्वीरों में सम्पादन एवं परिशोधन अत्यन्त सुकर हो गया है। तमाम तरह के फोटो फिल्टर ऐप भी मुफ्त में उपलब्ध हैं। बाजार ने सौन्दर्य के जिन छद्म मानकों की निर्मिति की है, ये ऐप बगैर किसी तकनीकी पेंच के आपकी तस्वीर को उसके मुताबिक संशोधित करते हैं। आज ऐसे कई ऐप हैं जो महज एक टैप से आपकी रंगत को एक शेड गोरा बना देते हैं, आँखों को नशीला अथवा होंठों को ग्लॉसी बना देते हैं। रोशनी और रंगों के सम्यक् संयोजन एवं फोटोशॉप व अन्यान्य सम्पादन तकनीक की मदद से आपकी तस्वीर आपका एक फॉल्स स्टेटस निर्मित करती है।

आभासी दुनिया के इस डिजीटलीकरण ने सर्वाधिक नुकसान इसी नकलीपने को बढ़ावा देने के मामले में किया है। यह सीरत पर सूरत की महाविजय का युग है। विचारधारा या आइडियोलॉजी का पूर्णरूपेण ह्रास हो चुका है। नकली चाकचिक्य ने नकली विचारों और विचारसरणियों की निर्मिति की है। हमारी चिन्ताएँ नकली हो गयी हैं। दुनिया की जितनी ठोस और असली वजहें थीं, जो हमें सोचने पर बाध्य करने की केफियत रखा करती थीं, मसलन बेरोजगारी, भुखमरी, विस्थापन, साम्प्रदायिकता आदि, उनकी जगह मोटापा, झुर्रियाँ, अनचाहे बाल, गंजापन, गोरेपन की चाहत आदि ने हस्तगत कर रखी हैं। दिखने-दिखाने पर जोर है। 'होने' का स्थान 'दिखने' ने ले लिया है। आप किसी की खुशी या गमी में तब तक शामिल नहीं माने जाते, जब तक आपका शामिल होना केमरे के क्लिक की मुहर नहीं पा जाता। सैलानी घूमने-फिरने कम, जगहों की तस्वीरें उतारने में अधिक मशगूल रहते हैं। पिछले डेढ़-दो दशकों के आत्ममुग्धता के इस दौर का अनिवार्य उत्पाद बनकर उभरी है, सेल्फी। सेल्फी, अर्थात् खुद के द्वारा खुद की उतारी गयी तस्वीर। इन वर्षों में इसका एक खास पैटर्न निर्मित हो चुका है। आगे के किसी अंक में इस पर विस्तार से।

इस आभासी समाज में सबकुछ दिखने-दिखाने पर निर्भर करता है। इस दुनिया का आप्तवचन है- जो दिखता है, वही बिकता है। इस सन्दर्भ में फेसबुक की संरचना का एक अहम हिस्सा है- प्रोफाइल पिक्चर। प्रोफाइल पिक्चर के रूप में चस्पाँ हमारी तस्वीर हमारे बारे में इन्फॉर्मेशन क्रिएट कर सकती है, ऐसा फेसबुक जैसे सोशल साइट्स के प्रचलन में आने पर ही सम्भव हुआ। तस्वीरें अब महज गूँगी तस्वीरें नहीं रहीं, वे सूचना का साधन बन चुकी हैं। इन तस्वीरों के माध्यम से हमारी रुचियों व रुझान, हमारी आस्थाओं व पहचान की अभिव्यक्ति होती है।

gorkysingh@gmail.com

नकारात्मक कार्बन ऊर्जा

आवश्यकता और वर्तमान परिदृश्य

प्रज्ञा गौतम

प्रज्ञा गौतम ने विगत वर्षों में तेजी से विज्ञान लेखन में अपनी पहचान बनाई है। आपने विज्ञान प्रगति तथा विज्ञान कथा में नियमित लेखन किया। आपने बॉटनी में स्नातकोत्तर तक शिक्षा प्राप्त की तथा विज्ञान शिक्षक के रूप में अपना कॅरियर शुरू किया। वैज्ञानिक आधार पर लेखन करने में आपको महारत हासिल है। गहरी वैज्ञानिक दृष्टि और साहित्यिक अभिरुचि के चलते आपकी रचनाएँ मुक्ता, अहा जिंदगी, कादम्बिनी आदि में प्रकाशित हुई हैं। वर्तमान में आप कोटा, राजस्थान में निवासरत हैं।

त्वरित औद्योगिक विकास और ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मुख्य रूप से जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता ने वातावरणीय गैसों का संतुलन बिगाड़ दिया है। विविध उद्योगों, विद्युत गृहों, और वाहनों द्वारा उत्सर्जित कार्बन डाइऑक्साइड, सल्फ़र डाइऑक्साइड और नाइट्रोजन डाइऑक्साइड आदि ग्रीन हाउस गैसें जलवायु परिवर्तन और विश्व ऊष्णन के लिए उत्तरदायी हैं। इनमें सबसे प्रमुख गैस कार्बन डाइऑक्साइड है जो जीवाश्म ईंधन के दहन से उत्पन्न होती है। बढ़ते हुए कार्बन उत्सर्जन और साथ ही वनों के विनाश के कारण वायुमंडल में CO_2 का स्तर बहुत बढ़ गया है। वर्तमान में यह स्तर 0.03% से बढ़कर 0.04% हो गया है जो कि पर्यावरण के लिए एक गंभीर संकेत है। जलवायु परिवर्तन, केवल पारिस्थितिक तंत्र पर ही प्रभाव नहीं डालता बल्कि यह समाज के आर्थिक, सामाजिक और तकनीकी विकास को भी प्रभावित करता है। ऊर्जा स्त्रोतों के रूप में ऊर्जा के नवीकरणीय संसाधनों का योगदान नाम मात्र का है। आज भी ऊर्जा के प्रमुख स्त्रोत के रूप में हम जीवाश्म ईंधन पर ही निर्भर है। कार्बन फुट प्रिंट में कमी लाने के लिए वातावरण से कार्बन डाइऑक्साइड को हटाना या नकारात्मक कार्बन उत्सर्जन की तकनीकों का विकास अब वर्तमान समय की आवश्यकता हो गया है। जलवायु परिवर्तन पर U.N.अन्तरशासकीय पैनल (IPCC) ने अपनी नवीनतम रिपोर्ट (अक्तूबर 2018) में कहा है कि विश्व ऊष्णन 1.5°C तक स्थिर रखने के लिए 2030 तक कार्बन उत्सर्जन में 45% की कमी लानी होगी और 2050 तक कार्बन उत्सर्जन शून्य करना होगा।

पिछले 20 वर्षों से कार्बन अभिग्रहण तकनीकों और नकारात्मक कार्बन उत्सर्जन पर निरंतर शोध होरहे हैं, और 2016- 2018 के बीच में इस तकनीक के व्यवसायीकरण में खासी प्रगति हुई है। प्रमुख रूप से USA, UK और चीन इस मामले में अग्रणी रहे हैं। औद्योगिक इकाइयों से कार्बन अभिग्रहण और संग्रहण (CCS) और वातावरण से सीधे कार्बन अभिग्रहण (DAC) तकनीकों पर नवीन शोध किए जा रहे हैं ताकि इनकी लागत कम हो सके।

औद्योगिक इकाइयों से वृहत मात्रा में कार्बन अभिग्रहण और संग्रहण (CCS)

कार्बन अभिग्रहण और संग्रहण (कार्बन कैप्चर एंड स्ओरेज CCS) वह तकनीक है जिससे किसी औद्योगिक इकाई या थर्मल पॉवर प्लांट उत्सर्जन से कार्बन डाइऑक्साइड अभिग्रहीत कर उचित स्थान पर संग्रहीत कर ली जाती है, ताकि यह गैस वायुमंडल में नहीं मिल सके। वातावरण से कार्बन अभिग्रहण की संकल्पना बहुत नवीन नहीं है, यह सबसे पहले 1938 में US में प्रस्तावित की गयी थी। प्रारंभ में इस प्रक्रिया को व्यवहार में लाने में अनेक तकनीकी, सुरक्षा और लागत सम्बन्धी कठिनाइयाँ थीं किन्तु अब विश्व में अनेक इकाइयाँ इस हेतु सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं। प्रथम कार्बन अभिग्रहण संयंत्र टेक्सास में शेरोनरिज आयल फील्ड में सन 1972 में लगाया गया था। इसके 24 वर्ष बाद नॉर्वे (नार्थ सी) में विश्व का प्रथम एकीकृत कार्बन अभिग्रहण और संग्रहण संयंत्र स्थापित किया गया।

इस तकनीक के तीन चरण हैं, CO_2 अभिग्रहण (कैप्चर), परिवहन (ट्रांसपोर्ट) और संग्रहण (स्टोरेज)। सर्वप्रथम औद्योगिक इकाइयों की चिमनियों से उत्सर्जित धुएं से कार्बन डाइऑक्साइड पृथक कर ली जाती है क्योंकि इस धुएं में SO_2 जैसी संक्षारक गैसें भी होती हैं जो परिवहन के समय

पाइपलाइन को क्षति पहुंचा सकती हैं। CO_2 को पृथक करने के लिए मुख्य रूप से तीन विधियाँ काम में ली जाती हैं- 1. दहन पश्चात अभिग्रहण 2. दहन पूर्व अभिग्रहण और 3. ऑक्सीफ्यूल दहन।

दहन पश्चात अभिग्रहण में CO_2 को सीधा कारखानों की चिमनियों की गैसों से पृथक किया जाता है। इस तकनीक का पॉवर प्लांट्स में व्यावसायिक रूप से इस्तेमाल किया जा रहा है। यह तकनीक शोध संस्थानों में अधिक प्रचलित है क्योंकि ज्यादातर पुरानी औद्योगिक इकाइयांइस तकनीक के व्यावहारिक उपयोग हेतु अनुपयुक्त हैं। दहन पूर्व CC तकनीक अनेक औद्योगिक इकाइयों में काम में ली जा रही है। इसमें जीवाश्म ईंधन का आंशिक रूप से ऑक्सीकरण किया जाता है जिसके परिणाम स्वरुप CO और H_2 का मिश्रण प्राप्त होता है जिसे सिनगैस कहते हैं। सिनगैस की जलवाष्प से क्रिया करवाने पर कार्बन डाइऑक्साइड और हाइड्रोजन का मिश्रण प्राप्त होता है। प्राप्त CO_2 को संपीडित कर संग्रहित कर लिया जाता है। बची हुई हाइड्रोजन ईंधन के काम में आ जाती है। यह तकनीक खाद के कारखानों और हाइड्रोजन उत्पादन यूनिट्स में काम में ली जा रही है।

ऑक्सीफ्यूल दहन तकनीक में ईंधन का वायु के स्थान पर शुद्ध ऑक्सीजन में दहन किया जाता है। इससे जलवाष्प और शुद्ध कार्बन डाइऑक्साइड का मिश्रण प्राप्त होता है। जलवाष्प के संधनन के बाद बची शुद्ध कार्बन डाइऑक्साइड का अवशोषण, अधिशोषण अथवा मेम्ब्रेन गैस सेपरेशन विधि द्वारा अभिग्रहण कर लिया जाता है। अभिग्रहण के बाद कार्बन डाइऑक्साइड गैस को पाइपलाइन द्वारा संग्रहण स्थान तक ले जाया जाता है। यह स्थान सामान्यतः तेल का खाली कुआँ होता है। भूमि के कई किलोमीटर नीचे तेल से रिक्त चट्टानों के बीच में इसे संग्रहित कर लिया जाता है। इस प्रक्रिया से तेल के रिक्त कुएँ में पुनः तेल की भरपाई होती रहती है।

औद्योगिक इकाइयों की चिमनियों के उत्सर्जन से कार्बन डाइऑक्साइड के अभिग्रहण की तकनीक 90 प्रतिशत तक कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन में कमी ला सकती है। यह तकनीक सल्फर डाइऑक्साइड और नाइट्रोजन डाइऑक्साइड के उत्सर्जन में भी कमी लाती है। समय के साथ तकनीक में काफी

सुधार हुआ है इसलिए अब इसकी लागत भी कम हो गयी है। वर्तमान में कार्बन अभिग्रहण की विश्व में 18 ऑपरेशनल और 16 औद्योगिक इकाइयाँ हैं। अंतर्राष्ट्रीय ऊर्जा संस्था के अनुसार इनसे प्रतिवर्ष 30 मिलियन टन कार्बन डाइऑक्साइड अभिग्रहीत की जाती है। हालाँकि पेरिस समझौते के अनुसार 2040 तक कार्बन उत्सर्जन को कम करने का जो लक्ष्य है, उसके लिए यह काफी कम है। समय के साथ -साथ नवीन तकनीक के विकास से वृहत मात्रा में CO_2 संग्रहण की समस्या समाप्त हो गयी है। ज्यादातर कंपनियां CO_2 का संग्रहण भूमि के अन्दर चट्टानों की परतों के बीच में करती हैं जहाँ पहले तेल पाया जाता था। यद्यपि इस प्रक्रिया में ऊर्जा की अधिक मात्रा में आवश्यकता और परिवहन के समय पाइपलाइन से CO_2 रिसाव का खतरा जैसी बाधाएं तो हैं ही।

वातावरण से सीधा Co_2 अभिग्रहण (DAC)

डायरेक्ट एयर कैप्चर (DAC) अभिकल्पना को भी 30 वर्ष होने को आये हैं। सन 1990 में यूरोपियनस्पेस एजेंसी ने अपने स्पेसमिशंस(अन्तरिक्ष स्टेशन और शटल बोर्ड) के लिए यह तकनीक विकसित की थी। पिछले 20 वर्षों से इस तकनीक को पृथ्वी के वायुमंडल से CO_2 हटाने के लिए विकसित किया जा रहा है।

डायरेक्ट एयर कैप्चर (DAC) वह तकनीक है जिसके द्वारा सीधे ही वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड गैस को हटा दिया जाता है। इस तकनीक में बड़े-बड़े पंखों की सहायता से धकेल कर वायु को एक फ़िल्टर से गुजरा जाता है, जिसमें रासायनिक अवशोषक होते हैं। रासायनिक अवशोषकों के रूप में सोडियम हाइड्रोक्साइड, प्लास्टिक रेजिन, या ठोस एमीनअधिशोषक का प्रयोग किया जाता है। वायु को इस फ़िल्टर से गुजारने पर CO_2 का अधिशोषण हो जाता है। जब फ़िल्टर गैस से संतृप्त हो जाता है तो ऊष्मा प्रदान कर शुद्ध कार्बन डाइऑक्साइड को प्राप्त कर लिया जाता है। यह कार्बन डाइऑक्साइड संग्रहित कर उपयुक्त स्थान पर उपयोग हेतु भेज दी जाती है या भूमि के भीतर तेल के खाली कूपों में इंजेक्ट कर दी जाती है। वृहत स्तर पर इसे लागू करने में अनेक तकनीकी बाधाएं हैं, जैसे उच्च लागत, इस प्रक्रिया (अभिग्रहण, परिवहन, और इंजेक्शन) में बहुत अधिक मात्रा में ऊर्जा की आवश्यकता होती है। फ़िल्टर में प्रयुक्त रासायनिक अवशोषकों की विषाक्तता सम्बन्धी खतरे तो हैं ही। इसके अतिरिक्त लम्बे समय तक CO_2 का सुरक्षित संग्रहण भी एक समस्या है। तेल कंपनियां इस तकनीक की तरफ आकर्षित हो रही हैं क्योंकि संग्रहित कार्बन डाइऑक्साइड, तेल कूपों में तेल के पुनर्भरण हेतु उपयोग में ली जा सकती है।

वर्तमान में अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियां जैसे डेविडकैथ की कंपनी 'कार्बन इंजीनियरिंग' (कनाडाबेस्ड), स्विस कंपनी 'क्लाइमवर्क्स', 'ग्लोबलथर्मोस्टेट', नीदरलैंड्स की कंपनी 'स्काईट्री' और US कंपनी 'इनफिनिटट्री' इस क्षेत्र में कार्य कर रही हैं। 'कार्बन इंजीनियरिंग' कंपनी, 2015 में स्थापित हुई थी। यह बिल गेट्स और मुरेएडवर्ड्स जैसी हस्तियों द्वारा वित्त पोषित है, और कार्बन डाइऑक्साइड तेल कंपनियों को सप्लाई करती है। 'क्लाइमवर्क्स' विश्व की प्रथम कंपनी है जिसने DAC तकनीक का सर्वप्रथम व्यावसायिक इस्तेमाल किया। इसने ज्यूरिख में अपना प्रथम DAC प्लांट मई 2017 में स्थापित किया। यह कंपनी 900 टन CO_2 प्रतिवर्ष ग्रीनहाउस को सप्लाई करती है जहाँ सब्जियां उगाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त तेल कंपनी (रेकजविकएनर्जी) भी इसकी साझेदार है। वर्तमान DAC तकनीक में 1 टन CO_2 केनिष्कर्षण में करीब 45 गीगाजूल ऊर्जा

की खपत होती है। इस के साथ ही यदि एमीन अधिशोषक का उपयोग किया जाए तो वृहत मात्रा में जल की भी आवश्यकता होती है इस तकनीक पर निरंतर शोध हो रहे हैं ताकि उपरोक्त समस्याओं का निवारण हो सके और साथ में DAC यूनिट की लागत में भी कमी आ सके। ज्यादातर कंपनियां अवशोषित कार्बन डाइऑक्साइड से ईंधन या अन्य बहुमूल्य रसायन प्राप्त करने के लिए एक संयुक्त यूनिट साथ में लगाती हैं जिससे संग्रहण और परिवहन की समस्या समाप्त हो जाती है। CO_2 का उपयोग पोषक के रूप में ग्रीनहाउस के लिए भी किया जाता है।

शैवाल आधारित कार्बन अभिग्रहण

कार्बन उत्सर्जन एक वैश्विक समस्या है और नकारात्मक कार्बन उत्सर्जन तकनीक को प्रभावी रूप से विश्व भर में इस्तेमाल करना आवश्यक हो गया है। पारम्परिक DAC तकनीक में उच्च लागत और ऊर्जा की खपत की समस्या है इसलिए इस तकनीक का उपयोग सीमित मात्रा में हो रहा है। साथ ही हानिकारक रसायनों के उपयोग के कारण इन्हें पर्यावरण के लिए हितकर भी नहीं कहा जा सकता। शैवाल आधारित कार्बन अभिग्रहण वायुमंडल से कार्बन डाइऑक्साइड हटाने की एक प्रभावी विधि है। सूक्ष्म शैवाल जल में वृद्धि करते हैं इसलिए CO_2 युक्त गैसें सीधे ही जलीय माध्यम में प्रवाहित की जा सकती हैं। सूक्ष्म शैवाल कार्बन डाइऑक्साइड के बहुत अच्छे अवशोषक हैं क्योंकि ये प्रकाश संश्लेषण की उच्च क्षमता रखते हैं। ये तीव्र वृद्धि करते हैं। इस प्रक्रिया में उत्पादित जैव- भार का उपयोग भोजन या पशु आहार के रूप में किया जा सकता है। इससे ईंधन या अन्य उपयोगी पदार्थों का संश्लेषण भी किया जा सकता है। शैवाल सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में CO_2 का अवशोषण कर इसे जैव-भार में बदल देते हैं। आवश्यक पोषक तत्व ये जलीय वातावरण से ग्रहण करते है। एक किलोग्राम शैवाल शुष्क भार, 1.83 kg CO_2 का उपयोग कर लेता है। एक एकड़ में स्थित सूक्ष्म

कार्बन उत्सर्जन एक वैश्विक समस्या है और नकारात्मक कार्बन उत्सर्जन तकनीक को प्रभावी रूप से विश्व भर में इस्तेमाल करना आवश्यक हो गया है। पारम्परिक DAC तकनीक में उच्च लागत और ऊर्जा की खपत की समस्या है इसलिए इस तकनीक का उपयोग सीमित मात्रा में हो रहा है। साथ ही हानिकारक रसायनों के उपयोग के कारण इन्हें पर्यावरण के लिए हितकर भी नहीं कहा जा सकता।

शैवाल 2.7 टन CO_2 का प्रतिदिन उपयोग कर लेते हैं। अनेक बड़ी कंपनियां जैसे 'ड्यूकएनर्जी' (US आधारित) इस तकनीक को व्यावसायिक रूप से विकसित करने में रुचि ले रही हैं। भारत में भी इस हेतु शोध किए जा रहे हैं। इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम उच्च CO_2 अवशोषक शैवाल प्रजातियों का चयन किया जाता है जैसे हाइड्रोडिक्टिओन, स्पाइरोगाइरा, ओसिलेटोरिया और क्लोरेला आदि। शैवाल कल्चर हेतु एक फोटो -बायोरिएक्टर का उपयोग किया जाता है जो कि एक पारदर्शी कांच द्वारा बंद तालाब प्रणाली है। इसमें नियंत्रित वातावरण में वांछित शैवाल उगाये जाते हैं। बंद होने के कारण कार्बन डाइऑक्साइड बाहर नहीं निकल पाती तथा अन्य अवांछित शैवालों,जीवाणु और फफूंदका भीतर प्रवेश नहीं होता।

भारत में CCS तकनीक: वर्तमान और भविष्य में संभावनाएं

विश्व के कार्बन उत्सर्जन में भारत की 7% की भागीदारी है। आंकड़ों पर नजर डालें तो स्थिति चौंकाने वाली है। ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में भारत का विश्व में चौथा स्थान है। भारत में 66% विद्युत उत्पादन थर्मल पॉवर प्लांट्स द्वारा होता है जिनमें 85% कोयले पर आधारित हैं। भारत में कार्बन उत्सर्जन की दर में 4.5% प्रतिवर्ष की वृद्धि हो रही है। भारत की 2030 तक अपने जलवायु लक्ष्य पूर्ण करने के लिए जल विद्युत गृहों, पवन ऊर्जा और सौर ऊर्जा पर निवेश करने की योजनाएं हैं। IPPC (2018) के अनुसार बिना CCS तकनीक अपनाये कार्बन उत्सर्जन में कमी का लक्ष्य पूर्ण करना 140% अधिक महंगा है। जलवायु परिवर्तन पर पेरिस समझौते (2015) के अनुसार बिना CCS और जैव ऊर्जा और CCS का समन्वयन (BECCS) अपनाये बिना जलवायु लक्ष्य पूरा करना असंभव है।

भारत में CCS तकनीक का क्रियान्वयन प्रारंभ हो गया है किन्तु फिलहाल मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ हैं जैसे CO_2 के भूमिगत संग्रहण पर लोगों की नकारात्मक प्रतिक्रिया, उच्च लागत, उच्च ऊर्जा खपत, CCS तकनीकों के चयन संबंधी असमंजस, और पर्यावरणीय प्रभाव आदि। कार्बन डाइऑक्साइड के भौगोलिक भण्डारण संबंधी शोध की भी भारत में आवश्यकता है। एक अध्ययन के अनुसार भारत में, CO_2 की समुद्र तटीय भूमिगत भण्डारण क्षमता 300-400 गीगा टन, बेसाल्ट चट्टानों में 200-400 गीगा टन, खनन अयोग्य कोयला खानों में 5 गीगा टन, और खाली तेल और गैस के कूपों में 5-10 गीगा टन है। इस सम्बन्ध में अभी और अधिक अध्ययन की आवश्यकता है।

नेशनल एल्युमीनियम कम्पनी (NALCO), ONGC, भारत हैवी इलेक्टिकल लिमिटेड। (BHEL) और APGENCO आदि कंपनियां CCS तकनीक पर कार्य आरम्भ कर चुकी हैं। NTPC शैवाल आधारित कार्बन संग्रहण पर प्रोजेक्ट प्रारंभ कर चुकी है। भारतीय ऊर्वरक क्षेत्र भी CCS तकनीक को अपना चुका है। फिलहाल CCS तकनीक का उपयोग भारत में शैशव अवस्था में ही है।

pragyamaitrrey@gmail.com

चिकित्सा के क्षेत्र में
नैनो प्रौद्योगिकी

मणि प्रभा

इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, इलाहाबाद से एम.एस-सी. (रसायन) में प्रथम पोजीशन । अब तक पच्चीस लोकप्रिय विज्ञान आलेख 'विज्ञान', 'विज्ञान परिचर्चा' तथा 'वैज्ञानिक' जैसी प्रतिष्ठित विज्ञान पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं । भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्राम्बे, मुम्बई द्वारा आयोजित 'होमी भाभा विज्ञान लेखन प्रतियोगिता' में वर्ष 2016 में प्रथम पुरस्कार से सम्मानित। विज्ञान परिषद् प्रयाग द्वारा प्रकाशित प्राचीनतम विज्ञान पत्रिका- 'विज्ञान' के शताब्दी वर्ष समारोह में वर्ष 2014 में प्रकाशित उत्कृष्ट आलेख हेतु महामहिम राज्यपाल उत्तर प्रदेश श्री राम नाईक जी द्वारा प्रतिष्ठित 'डॉ. गोरख प्रसाद विज्ञान पुरस्कार' से सम्मानित । प्रतिष्ठित 'धरम देवी मंगल सेन गोविल स्कॉलरशिप'-2018 प्रदत।

नैनो प्रौद्योगिकी ने विगत दशकों में उल्लेखनीय प्रगति की है। नैनो सामग्री के बहुत सारे अनुप्रयोग आज वास्ताविकता बन गए हैं। जैव अनुकूलित नैनो सामग्री से बने नैनों यंत्र अथवा नैनो कणों को मरीज के शरीर के भीतर सुई के द्वारा पहुँचा दिया जाता है। शरीर के भीतर नैनो-यंत्र की क्रियाओं की निगरानी के लिए चुंबकीय अनुनाद प्रतिबिंबन (Magnetic Resonance Imaging - MRI) का उपयोग किया जाता है। चिकित्सीय नैनो यंत्रों अथवा कुछ नैनो कणों को पहले नस के माध्यम से मरीज के शरीर में सुई द्वारा पहुँचाया जाता है। चिकित्सक मरीज के शरीर के भीतर उसकी प्रगति की निगरानी करते हैं एवं यह सुनिश्चित करते हैं कि नैनो यंत्र अथवा नैनो कण उपचार के लिए लक्षित स्थान पर पहुँच गए हैं। कोशिकाओं को खोजने के लिए रंजकों का प्रयोग करके कोशिकाओं को रंगीन बनाते हैं। क्वांटम डॉट को प्रोटीन से संबद्ध कर दिया जाता है, जो कोशिका भित्ति को बेधित करते हैं। ये क्वांटम डॉट विभिन्न आकार के हो सकते हैं एवं जैव निष्क्रिय सामग्री से बने होते हैं, परंतु उन्हें नैनो पैमाने के रंग पर निर्भर गुण प्रदर्शित करने चाहिए। चुंबकीय अनुनाद प्रतिबिंबन के लिए मैंगनीज ऑक्साइड नैनो कणों का उपयोग विभेदन कारक के रूप में किया जाता है।

मानव शरीर कई नैनो मशीनों के संयोजन से बना है। वास्तव में शरीर की प्रत्येक कोशिका में ऐसे असंख्य नैनो पुर्जे की बनावट या कार्य प्रणाली में फेरबदल का परिणाम है- अस्वस्थता, जिसका उपाय हम खोजते रहें हैं। जैसे लोहा लोहे को काटता है वैसे ही कल्पना की जाती है कि ऐसी तकनीकें विकसित हो पाएं जहां शरीर के नैनोपुर्जों को नैनोपुर्जों से ही चुनौती दी जाए। ऐसा निश्चय ही संभव है। बस ऐसे कुछ विशिष्ट पुर्जों की पहचान कर ली जाए जो केवल विशिष्ट कोशिकाओं में निहित हों और अस्वस्थता का कारण भी वही हों। नैनोचिकित्सा के अनेक उपक्षेत्रों में तेजी से लेकर औषधि वाहक तक अनेक पक्ष सम्मिलित हैं ।

नैनो विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से अधिक लक्षित दक्षता एवं कम विषैलेपन तथा दुष्प्रभाव युक्त नैनो आकार वाले अणुओं की दवाओं को विकसित कर गहरा प्रभाव डालने की आशा की जाती है। कैंसर के उपचार में (कीमोथेरेपी एवं रेडियोथेरेपी) मुख्य समस्या यह है कि दवाएं आवश्यकता से अधिक मात्रा में मुक्त होती हैं तथा ये क्षेत्र निर्दिष्ट नहीं होती हैं। गंभीर विषैलापन उत्पन्न करने के अतिरिक्त ये प्रतिवेशी ऊतकों को विस्तृत समपार्श्विक क्षति पहुँचाती हैं।

औषधि के भेजे गुणों में सुधार लाने के लिए वसा या बहुलक आधारित नैनोकणों को को औषधवाहनों के रूप में उपयोग में लाने के अनेक प्रयास जारी हैं। ऐसा माना जा रहा है कि अतिसूक्ष्म होने के कारण कोशिकाएं नैनोकणों को शीघ्रता से ग्रहण कर लेंगी, जबकि बडे कणों का शरीर से निकास हो जाएगा। औषधि वाहकों के कुछ गुण भी मायने रखेगें, जैसे एक है, पारगम्यता ताकि उनमें कोशिका झिल्ली या दीवार को पार करने की सरलता हो। वह हर कोशिका झिल्ली को न लांघ पाएं, शरीर से उनका निकास भी धीमा हो।

वैज्ञानिकों ने औषधि प्रतिरोधी कैंसरों के लिए ऐसे वसीय नैनोकणों का विकास किया जो न केवल औषधि को सही या भेदी कोशिकाओं तक ले जाते हैं, अपितु उनके प्रतिरोधक गुण के प्रतिकारक भी रखते हैं। इन नैनोकणों का मुख्य अवयव वसीय पॉलीमर है जो शरीर की प्रतिरोधक प्रणाली द्वारा नहीं पहचाना जा सकता है। पॉली (एथीलीन)-600 हाइड्रॉक्स स्टीएरेट जब प्रतिरोधक

वैसे नैनो सामग्रियों का उपयोग करके औषधि अंतरण प्रणाली विकसित करने के बहुत सारे कारक हैं, जैसे- नैनो सामग्री की जैविक वातावरण एवं लक्षित कोशिका सतह ग्राही के साथ अंतर्क्रिया, औषधि मुक्ति की विधियां, उपचार के अधीन बीमारियों का विकृति विज्ञान, दी गई दवा पर कोशिका की आण्विक क्रियाविधि को अच्छी तरह से समझना होगा। इसलिए औषधि अंतरण प्रणाली की दक्षता औषधि अणु के दक्ष संपुटन, चयनित स्थान पर सूक्ष्मता से एवं सफल विमुक्ति के साथ औषधि का अंतरण दवा के अवशोषण एवं वितरण पर निर्भर करता है।

प्रणाली से बचकर कैंसर कोशिकाओं में प्रवेश करता है,तब यह नैनोकण से अलग हो जाता है, स्वतंत्र कोशिका के P-ग्लाइको प्रोटीन को निष्क्रिय कर देता है।

नैनो कणों के आकार आधारित गुणों का उपयोग कैंसर के उपचार में अधिक दक्ष औषधि अंतरण प्रणाली विकसित करने एवं शरीर के भीतर उनका चित्र लेने दोनों के लिए किया जा सकता है। प्रतिदीप्तिशील (Fluorescent) क्वांटम डॉट के पास आकाश पर निर्भर प्रकाश उत्सर्जन गुण है एवं उसे उत्तेजन के लिए मात्र एक प्रकाश स्रोत की आवश्यकता है, चुंबकीय अनुनाद प्रतिबिंवन के संयोजन के साथ कंट्रास्ट मीडिया के रूप में इनका उपभोग कम खर्च में असाधारण स्पष्टता से रसौली (ट्यूमर) स्थल पर चित्र उत्पन्न कर सकते हैं। जब कैडमियम सेलेनाइड क्वांटम डॉट सुई अंतः क्षेपित की जाती है, तो ये कैंसर की रसौली में रिस जाती हैं। जब पराबैंगनी प्रकाश इस क्षेत्र पर चमकाया जाता है, कैडनियम सेलेनाइड क्वांटम डॉट चमकते हैं, शल्य-चिकित्सक इसका उपयोग रसौली का सही स्थल निर्धारण करने एवं परिवेशी ऊतक की निम्नतम क्षति के साथ उसको निकालने में करते हैं।

आवश्यक क्रियात्मक समूह, जो कुछ रसौली कोशिकाओं को खोजे एवं अपने को उससे बाँध सके, को जोड़ने के लिए नैनो कणों की उच्च अभिमुखता अनुपात (Aspect Ratio) का दोहन किया जा सकता है। दूसरी औषधि अंतरण प्रणाली, जो एक दिन रसायनोपचार को स्थानापन्न कर सकती है, वह है कान्जियस आर.एफ.उपचार (Kanzius R.F. Therapy)। इस उपचार में स्वर्ण नैनो कर्ण को कैंसर कोशिकाओं से आबद्ध कर रेडियो तरंगों के साथ क्रिया कराई जाती है। चूंकि धातु रेडियो तरंगों से जीवित कोशिकाओं की अपेक्षा अधिक दक्षता से ऊर्जा अवशोषित करता है। स्वर्ण नैनो कण परावैद्युत तापन द्वारा तेजी से एवं अधिक दक्षता से गरम हो जाते हैं। तापन के द्वारा शरीर के भीतर कैंसर कोशिकाएं झुलसाकर मार दी जाती हैं और स्वस्थ कोशिकाएं अप्रभावित रहती हैं।

औषधि अंतरण

अब तक उपयोग की गई औषधि अंतरण प्रणाली में दो मुख्य समस्याएं हैं-

- दी गई दवा के अणुओं की उचित स्थान पर उपस्थिति सुनिश्चित करना, जहाँ पर उनकी आवश्यकता है अथवा, जहाँ वह मरीज के शरीर में अधिकतम लाभदायक हैं
- शरीर में दवाओं का प्रभावी जैव वितरण इसलिए नैनो चिकित्सा का एक मुख्य महत्वपूर्ण क्षेत्र इन दो मार्ग रोधकों पर काबू पाने हेतु नैनो प्रौद्योगिकी एवं नैनो अभियंत्रण का उपयोग कर औषधि अंतरण प्रणाली विकसित करना है।

नैनो चिकित्सा शरीर में विशिष्ट स्थान पर संभव दीर्घ अवधि के लिए जैव उपलब्धता को अधिकतम बढ़ाने हेतु जैव अनुकूलित सामग्रियों के समुचित नैनो कणों या अणुओं को विकसित कर इस समस्या को सुलझा लिया है।

वैसे नैनो सामग्रियों का उपयोग करके औषधि अंतरण प्रणाली विकसित करने के बहुत सारे कारक हैं, जैसे- नैनो सामग्री की जैविक वातावरण एवं लक्षित कोशिका सतह ग्राही के साथ अंतर्क्रिया, औषधि मुक्ति की विधियां, उपचार के अधीन बीमारियों का विकृति विज्ञान, दी गई दवा पर कोशिका की आण्विक क्रियाविधि को अच्छी तरह से समझना होगा। इसलिए औषधि अंतरण प्रणाली की दक्षता औषधि अणु के दक्ष संपुटन, चयनित स्थान पर सूक्ष्मता से एवं सफल विमुक्ति के साथ औषधि का अंतरण दवा के अवशोषण एवं वितरण पर निर्भर करता है।

अनुवर्ती उपापचयी क्रियाशीलता एवं शरीर के हानिकारक उपापचय का मलोत्सर्जन भी औषधि अंतरण प्रणाली की सफलता के लिए महत्वपूर्ण है।

नैनो कण के विशेष गुणों का उपयोग कर जैव वितरण को सुधारकर एवं आवश्यक होने पर दवा की औषधि गतिकी (समयावधि में दवा की क्रिया) को बदलकर उन्नत औषधि अंतरण प्रणाली विकसित की जा रही है।

उन्नत औषधि अंतरण प्रणाली में कोशिका झिल्ली से होकर कोशिका द्रव में औषधि को प्राप्त करने की क्षमता होती है। दवा अणुओं के बड़े कण सामान्यतः कोशिका के द्वारा ग्रहण नहीं किए जाते हैं। वे नैनो कणों को उनके छोटे आकार के कारण स्वीकार कर लेते हैं। नैनो कण अवरोध के आर-पार औषधि को अंतरित करने के लिए है (tag) के रूप में

उपयोग किए जाते हैं।

यह अंतरण प्रणाली एक महान वरदान है, क्योंकि कई जीवन के लिए घातक बीमारियां कोशिका के भीतर होने वाली प्रक्रियाओं पर आधारित हैं। ये बड़े वृहद अणु वाली दवाओं को भी कोशिकाओं के भीतर स्थान, जहां उन्हें रोग से लड़ने की जरूरत है, अंतरित कर सकते हैं।

औषधि अंतरण दो प्रकार के हो सकते हैं-

- सुई अंतः क्षेपणीय औषधि अंतरण प्रणाली।
- प्रत्यारोपणीय औषधि अंतरण प्रणाली, जहाँ औषधि के अणु शरीर में प्रत्यारोपित कर दिए जाते हैं, एक ऐसी अंतरण प्रणाली भी हो सकती है, जहाँ औषधि अणु के नैनो कण लक्षित ठिकाने के ऊतकों एवं कोशिकाओं में प्रवेश कर जाते हैं।

इसके अतिरिक्त औषधि अणुओं के अधिक प्रभावी विसरण के द्वारा त्वचीय ऊतकों से होकर एक सारत्वचीय (Transdermal) प्रणाली भी हो सकती है। वैसे सबसे श्रेयस्करण अंतरण प्रणाली है, भौतिक औषधि अंतरण प्रणाली।

औषधि के नैनो कण मस्तिष्क विकार के उपचार में लाभप्रद पाए गए हैं, क्योंकि इन्होंने मस्तिष्क को खोलने या औषधि को संशोधित करने (जो दवा की प्रभावकारिता को कम कर सकता है) की आवश्यकता के बिना मस्तिष्क रक्त अवरोध को पार करने की क्षमता प्रदर्शित की है।

कुछ अनुसंधानकर्त्ताओं ने हाइड्रोजेन से व्युत्पन्न नैनो गोले का वाहक के रूप में उपयोग किया है। ये हाइड्रोजन अत्यंत स्थायी कार्बनिक यौगिक हैं, जो शरीर के भीतर के वातावरण के उत्तरोत्तर ज्यादा अम्लीय होने से पेट का वातावरण फूल जाते हैं।

अंतरण प्रणाली की रूपरेखा तैयार करने के लिए एक दिलचस्प प्रकार का अणु कार्बनिक डेंड्रीमर है, जो गोलीय बहुलक अणुओं की एक विशेष श्रेणी है, एक डेंड्रीमर अणु, अणुओं के केन्द्रीय प्रक्षेत्र के भीतर और बाहर गति कर सकता है, इस अणु के ऊपर सौ से अधिक आँकड़ें होते हैं, ये आँकड़ें अणु को शरीर में कोशिका से आबद्ध होने लायक बनाते हैं। चर्बी (लिपिड) या बहुलक आधारित नैनो कणों का उपयोग कर रूपांतरित किया गया अंतरण प्रणाली द्वारा औषधि की प्रभावशीलता को कई गुना उन्नत भी किया जा सकता है।

ऐसे नैनो पदार्थों का विकास हुआ है जो कई कैंसरों और आनुवांशिक रोगों में प्रयोग हो सकें। अभी तक इस क्षेत्र में विषाणु उत्पन्न वाहक उपयोग में लाए जाते रहे हैं, जो झिल्ली को पार कर जीन को कोशिका के अंदर पहुंचाते हैं। इन पदार्थों में वाइरस आधारित जीन विकित्सा, न तो सुरक्षित है और न ही उसकी प्रक्रिया को ठोस माना जा सकता है। अनायास ही कुछ उत्परिवर्तनों से जीन विकित्सा के दौरान कैंसर के जीन का सक्रिय हो जाना तक देखा गया है।

नैनो पदार्थों द्वारा ऐसे पदार्थों की खोज जारी है जो चिकित्सा को विश्वसनीय और सुरक्षित बना सकें। नैनोकण-न्यूक्लिक अम्ल बंधक जीन कई तरीकों से कोशिकाओं तक पहुचाएं जा सकते हैं, जैसे द्रव्य त्वचा पर लेपकर, क्रीमों द्वारा श्वास द्वारा या पतली परतें बनाकर, सूइयों या प्राब्स द्वारा आदि।

नैनों संवेदक के उपयोग का चिकित्सा की दुनिया में (किसी विशिष्ट कोशिका को ठीक-ठीक पहचानने में, उसका स्थान पता लगाने में एवं स्वस्थ तथा रोग प्रभावित कोशिका में अंतर बताने में) महती संभावनाएं हैं। चिकित्सा में प्रयुक्त नैनो संवेदक को तरल के सान्द्रण में परिवर्तन को मापने, आयतन परिवर्तन, विद्युतीय एवं चुंबकीय बल के साथ ही शरीर में कोशिकाओं के दाब एवं तापक्रम को मापने के लिए क्रमादेशित (Programmed) किया जाता हैं।

नैनो कणों का आवरण संपुटित अंतर्वस्तु का अपने लक्ष्य को अंतरण करने तक निम्नीकरण से आबद्ध करता है। वे स्वस्थ एवं झुर्रीमुक्त बने रहने हु कोशिकाओं के लिए उचित पोषक तत्व धनी वातावरण का निर्माण करने मात्र का लक्ष्य रखते हैं।

जैव प्रणाली को नियंत्रित करने वाले नैनो पैमाने की प्रक्रियाओं एवं संरचनाओं के असंख्य उदाहरण हैं, जीवित कोशिकाओं में बहुआयामी क्रियाओं को संचालित करने वाले सैकड़ों नैनो यंत्र हैं। यह उनका शुद्धता युक्त नैनो पैमाने की रचना को निरूपित करता है अनुसंधान कर्तागण नैनो मीटर परास (उदाहरण के लिए DNA एवं प्रोटीन) के अणुओं के अध्ययन से प्राप्त आण्विक

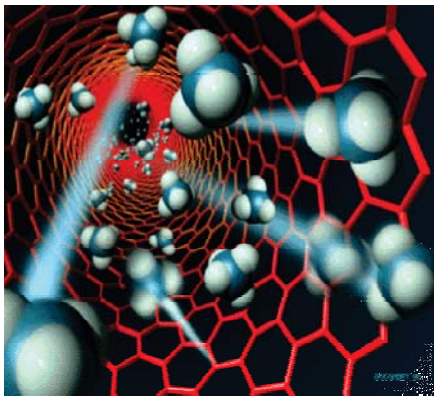

औषधि के नैनो कण मस्तिष्क विकार के उपचार में लाभप्रद पाए गए हैं, क्योंकि इन्होंने मस्तिष्क को खोलने या औषधि को संशोधित करने (जो दवा की प्रभावकारिता को कम कर सकता है) की आवश्यकता के बिना मस्तिष्क रक्त अवरोध को पार करने की क्षमता प्रदर्शित की है। कुछ अनुसंधानकर्त्ताओं ने हाइड्रोजेन से व्युत्पन्न नैनो गोले का वाहक के रूप में उपयोग किया है। ये हाइड्रोजन अत्यंत स्थायी कार्बनिक यौगिक हैं, जो शरीर के भीतर के वातावरण के उत्तरोत्तर ज्यादा अम्लीय होने से पेट का वातावरण फूल जाते हैं।

जैव प्रणाली को नियंत्रित करने वाले नैनो पैमाने की प्रक्रियाओं एवं संरचनाओं के असंख्य उदाहरण हैं, जीवित कोशिकाओं में बहुआयामी क्रियाओं को संचालित करने वाले सैकड़ों नैनो यंत्र हैं। यह उनका शुद्धता युक्त नैनो पैमाने की रचना को निरूपित करता है अनुसंधान कर्तागण नैनो मीटर परास (उदाहरण के लिए DNA एवं प्रोटीन) के अणुओं के अध्ययन से प्राप्त आण्विक जीव-विज्ञन के ज्ञन का उपयोग कर नए एवं सूक्ष्म नैनो पैमाना यंत्र की सृष्टि एवं इसका उपयोग नैनो पैमाने पर जीवन-क्रियाओं को अधिक व्यापकता से समझने के लिए करते हैं।

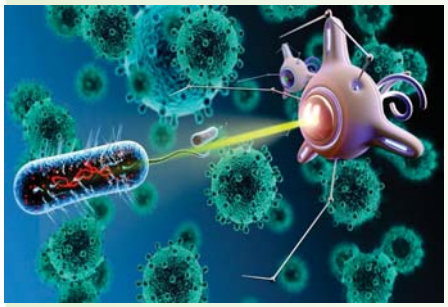

जीव-विज्ञान के ज्ञान का उपयोग कर नए एवं सूक्ष्म नैनो पैमाना यंत्र की सृष्टि एवं इसका उपयोग नैनो पैमाने पर जीवन-क्रियाओं को अधिक व्यापकता से समझने के लिए करते हैं।

रोगों की निगरानी के लिए नयी विधियाँ विकसित की गई हैं। एक अर्धचालक चिप को रोगी के शरीर में समाविष्ट कर चिकित्सा मानकों की देख-रेख की जाती है। प्राप्त आँकड़ों को रोगी के द्वारा पहने गए एक यंत्र में प्रेषित कर दिया जाता है। यह यंत्र आँकड़ों का विश्लेषण करता है एवं चिप को औषधि की उचित मात्रा उत्सर्जित करने के लिए औषधि अर्जन निकाय के रूप में काम करने का निर्देश देता है।

एक आण्विक मोटर निश्चित संख्या में आण्विक अवयवों का संयोजन है, जो बाहरी उत्तेजन के अधीन यांत्रिक गति प्रदर्शित करता है, आण्विक मोटर में एकीकृत बहुविधि संरचनाएं एवं प्रक्रियाएं होती हैं, ये एक-दूसरे का परस्पर सहयोग करने एवं साथ ही मोटर की बहुत-सी क्रियाओं का सहयोग (पोषण) करने के लिए संगठित की गई है। आण्विक मोटर सामान्य तथा जीवित जीवधारियों में पाए जाने वाले प्रोटीन को संदर्भित करता है, जो रासायनिक ऊर्जा को खर्च कर उसको यांत्रिक ऊर्जा में (कोशिका के भीतर गति एवं परिवहन) रूपांतरित करता है, कोशिकाओं में आण्विक मोटर प्रचुर मात्रा में रहती हैं। हमारे शरीर के विभिन्न मोटर प्रोटीन मानव कोशिका में विभिन्न विशिष्ट नियत कार्य का संपादन करते हैं, मायोसीन (मांसपेशी के सिकुड़ने के लिए उत्तरदायी) किनेसी कोशिका के भीतर 'कारगो' की गति के लिए उत्तरदायी एवं एटीपी रासायनिक ऊर्जा उपलब्ध कराने के लिए उत्तरदायी आदि कुछ महत्वपूर्ण मोटर प्रोटीन हैं, जैव रासायनिक आण्विक मोटर दो प्रकार के होते हैं। ये रेखीय आण्विक मोटर एवं घूर्णी आण्विक मोटर है। आण्विक मोटर, जो लेजेलम (Flagellum) को घुमाते हैं, घूर्णी मोटर का एक उदाहरण है।

प्राकृतिक रूप से उत्पन्न जैविक आण्विक मोटर ने नैनो वैज्ञानिकों एवं नैनो प्रौद्योगिकीविदों को ऐसा नैनो मोटर बनाने के लिए प्रेरित किया, जो मानव शरीर के भीतर एवं उसके बाहर विविध कार्यों को कर सके। आधुनिक समय में आण्विक मोटर जीवित जीवधारियों में प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले प्रोटीन को संदर्भित करता है, जो अनेक प्रकार की गति को प्रेरित करने के लिए रासायनिक ऊर्जा का उपयोग करता है।

निश्चित रूप से नैनो-प्रौद्योगिकी के माध्यम से मानव-जीवन को और अधिक गहराई से समझा जा सकेगा। कोई आश्चर्य नहीं यदि सजीव तथा निर्जीव का अन्तर और भी कम हो जाए व जीवन के प्रति मानव को अपना दार्शनिक दृष्टिकोण परिवर्तित करने के लिए ही बाध्य होना पड़े और सार्वभौमिक चेतना के किसी अनछुये धरातल पर मानव अपने वैज्ञानिक ज्ञान के सहारे जा पहुँचे। नैनो-प्रौद्योगिकी की सहायता से हम जैविक कोशिकाओं की कार्य प्रणाली को अधिक विस्तार से समझने में सफल होंगे, साथ ही कम्प्यूटरों के लिए और भी सूक्ष्मचिपों के निर्माण की क्षमता हममें आ जायेगी जिससे जैविकी के क्षेत्र में अनेक अभिनव अनुप्रयोग सम्भव होंगे। पदार्थ से आण्विक विन्यास को अनेक प्रकार से परिवर्तित कर वैज्ञानिक आज नैनो आकार की कणिकाएं, तार, रंध्रहीन ठोस पदार्थ और नैनो-आकार वाली संपुटिकायें कैप्सूल, बनाने के भी प्रयास कर रहे हैं।

maniprabhaoct1996@gmail.com

डॉ.राजेन्द्र प्रसाद मिश्र का जन्म 5 नवम्बर 1949 को केरवां कलां ग्राम जनपद प्रतापगढ़ हुआ। गणित में स्नातकोत्तर के बाद जोनपुर से पी. एच-डी की। इन दिनों आप मिर्जापुर में प्रवक्ता हैं। 'आधुनिक गणितकोश' और 'हिन्दी में विज्ञान' कृतियां प्रकाशित हैं। आपको विज्ञान परिषद शताब्दी सम्मान, आर्यभट्ट अशीष सर्जना पुरस्कार, बाल विज्ञान कार्यक्रम सम्मान आदि से विभूषिक किया गया है। प्रशिक्षण एवं गोष्ठी में आपकी सक्रिय सहभागिता रही है।

पाठक समूह के प्रत्येक वर्ग को उनके उपयोग, प्रेरणा और गणितीय आनंद के लिए गणितीय सामग्री का समावेश इस प्रति में किया गया है। गणित का आदि इतिहास, भारत के भाल की विभूति है और भारतीयता के स्वर्णिम इतिहास की गौरव गाथा है। भारत की उस प्राचीन बौद्धिक गतिशीलता को पुनः जीवन्त बनाने के लिए गणित के अध्ययन की आवश्यकता को प्रस्तुत प्रति के माध्यम से रेखांकित किया गया है।

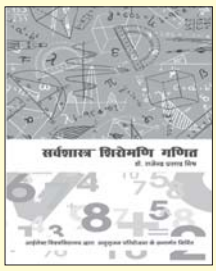

लैक्टो बैसीलस

कुमार सुरेश

9 सितम्बर 1962 को शिवपुरी में जन्म। बी.एससी. एमए देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इन्दौर से। 92-93 में नायब तहसीलदार, जिला खंडवा तथा 1994-2016 तक मध्यप्रदेश शासन सहकारिता विभाग में। आपके दो कविता संग्रह तथा एक उपन्यास के साथ-साथ 250 कविताएं हिन्दी की प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित। रजा पुरस्कार, अम्बिका प्रसाद दिव्य अलंकरण तथा मध्यप्रदेश लेखक संघ का पुष्कर सम्मान से सम्मानित।

'संयुक्त पृथ्वी और चंद्रमा राष्ट्र समिति' के वैज्ञानिकों की बैठक चंद्रमा पर स्थित मुख्य नगर नानी में स्थित 'पॉजीट्रान मीटिंग हॉल' में आयोजित की गई है। पृथ्वी और चंद्रमा पर स्थित सभी देशों के प्रतिनिधि मौजूद हैं। पृथ्वी से सभी राष्ट्रों के प्रतिनिधि तेज गति के 'सेमी लेजर' विमानों में आए हैं। इन विमानों की गति लगभग बीस हजार किलोमीटर प्रति घंटा है। इस गति से ये विमान लगभग बीस घंटे में चाँद पर पहुँच जाते हैं। बैठक जिस हॉल में हो रही है वो अपनी बनावट में अनूठा है। मुख्य द्वार में प्रवेश करते ही मेहमान जिस टाइल पर खड़ा होता है वो गतिमान होकर मेहमान को ले जाकर उसकी सीट तक छोड़ आती है। हरेक मेहमान के सामने कम्प्यूटर स्क्रीन है। उसे जब जिस चीज की आवश्यकता होती है वो स्क्रीन पर उंगली से टच कर देता है और एक बेआवाज ड्रोन लेजर की रस्सी से उस चीज को मेहमान के सामने रख देता है। सदस्य अपनी बात अपनी मातृभाषा में रखता है और सभी सदस्यों को उनकी मातृभाषा में सुनाई देता है।

बैठक के अध्यक्ष अमरीकी वैज्ञानिक 'माइकल जेम्स' ने अपनी बात रखी -

''उपस्थित सम्माननीय प्रतिनिधियों, आप सभी का यहाँ इस महत्वपूर्ण वैज्ञानिक सम्मेलन में स्वागत है। बड़े-बड़े संकटों का सामना सफलतापूर्वक करते हुए मनुष्य जाति अच्छी तरह से फल-फूल रही है। हमने चुनौतियों का सामना करते हुए पृथ्वी तथा वहाँ के निवासियों को तेईसवी शताब्दी तक सुरक्षित रखा है। बहुत सी गंभीर चुनौतियों का हम सामना कर चुके हैं। इक्कीसवी शताब्दी में पृथ्वी का तापमान तेजी से बढ़ने लगा था । इस परिघटना को 'ग्लोबल वार्मिंग' नाम दिया गया था। सारे संसार में चिन्ता फैल गई थी कि पृथ्वी से जीवन धीरे-धीरे समाप्त हो जाएगा, लेकिन मनुष्य ने हार नहीं मानी। वैज्ञानिकों ने ऐसे 'थर्मल जीवाणुओं' का विकास कर लिया जो तापमान को अपने भीतर अवशोषित कर उसे अपने आहार की तरह प्रयोग कर लेते हैं। इन जीवाणुओं के कारण पृथ्वी का बढ़ता तापमान रूक गया और पृथ्वी के ऊपर से महान संकट टल गया।

पृथ्वी पर दूसरा बड़ा खतरा परमाणु युद्ध का बढ़ता खतरा था जिससे संपूर्ण पृथ्वी नष्ट होने की आशंका थी। इक्कीसवी-बाईसवी शताब्दी में कई मौके ऐसे आये कि लगा परमाणु युद्ध होने को ही है और मानवता समाप्ति की कगार पर है। इस समस्या का हल भी वैज्ञानिकों ने निकाला। बहुत समय पहले जब पृथ्वी पर विज्ञान का विकास आरंभ ही हुआ था तब डॉल्टन नाम के एक वैज्ञानिक ने बता दिया था कि प्रत्येक पदार्थ अदृश्य और अविभाज्य परमाणुओं से मिलकर बना है। एक ही पदार्थ के सभी परमाणु समरूप और समान भार के होते हैं। अलग-अलग पदार्थों के परमाणु आपस में विरूप और अलग भार के होते हैं। परमाणु हथियार इस सिद्धांत पर तैयार किये गये थे कि एक भारी तत्व के न्यूक्लिआई जब अचानक टूटते हैं या आपस में जुड़ते हैं तो जबरदस्त विस्फोट की शक्ति उत्पन्न होती है जिससे पूरी पृथ्वी नष्ट हो सकती है। परमाणु की जो ऊर्जा इतना विनाश प्रस्तुत कर सकती है उसी का उपयोग करके रक्षा का उपाय निकाला गया। पृथ्वी के हरेक पदार्थ में अणु और परमाणु होते हैं। इन सभी के भीतर अनंत ऊर्जा छुपी रहती है। वैज्ञनिकों ने ऐसा तरीका खोज लिया था जिसके प्रयोग से जब भी कहीं परमाणु बम का विस्फोट हो तब उस विशाल ऊर्जा के ताप को महसूस करके प्रभावित इलाके के दूसरे साधारण पदार्थ जैसे मिट्टी के परमाणु भी सक्रिय होकर विपरीत ऊर्जा पैदा करें जिससे परमाणु बम से होने वाला विनाश नियंत्रित रहे। बाईसवी शताब्दी तक हर देश ने अपने इलाके की मिट्टी को इस तरह चार्ज कर लिया था कि वो परमाणु बम

की ऊर्जा को महसूस करते ही विपरीत और उतनी ही शक्तिशाली ऊर्जा का निर्माण आरंभ कर देती थी। इस उपाय से परमाणु बम का प्रभाव दूसरे साधारण बमों जितना ही रह गया और पृथ्वी के नष्ट होने का खतरा टल गया।

मनुष्य जाति के समक्ष तीसरा गंभीर खतरा था, बढ़ती जा रही जनसंख्या और घटते जा रहे संसाधनों का। इसके निराकरण के लिये संयुक्त राष्ट्र समिति की पहल पर सभी देशों की सरकारों ने जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम सफलता पूर्वक लागू किया। 'हम दो हमारा एक' नीति को सारे संसार ने स्वीकार कर लिया। मनुष्य ने बाईसवी शताब्दी तक चाँद पर भी बस्तियाँ बसाने में सफलता प्राप्त कर ली और काफी लोग वहाँ जाकर बस गए। मंगल ग्रह पर मौजूद खनिज संसाधनों का दोहन करने में भी सफलता मिल गई और उन्हें पृथ्वी पर लगातार लाकर उपयोग किया जाने लगा है। इस प्रकार जनसंख्या विस्फोट के खतरे से भी पृथ्वी को बचा लिया गया ।

पृथ्वी वासियों के समक्ष विद्यमान ऊर्जा की गंभीर समस्या का निराकरण भी काफी समय पहले ही कर लिया गया है । हम जानते हैं कि पृथ्वी में स्थित पेट्रोल के भंडार बहुत पहले समाप्त हो चुके हैं लेकिन पानी को ऑक्सीजन और हाइड्रोजन में सरलता से बदलने की तकनीक की खोज ने ईंधन की समस्या पूरी तरह समाप्त कर दी है। अब सभी यान और वाहन आसानी से पानी से चलाये जा रहे हैं।

'माइकल जेम्स' कुछ देर को रूके फिर उन्होंने अपनी बात आगे बढ़ाई -

''आज की बैठक इसलिये बुलाई गई है कि हाल ही में मनुष्य के सामने एक नई गंभीर चुनौती उठ खड़ी हुई है जिसका निराकरण खोजना आवश्यक है। पृथ्वी के वातावरण में मौजूद हानिकारक जीवाणुओं पर नियंत्रण करने के लिये मनुष्य आदिकाल से ही लगातार प्रयास करता रहा है। रोग पैदा करने वाले जीवाणुओं के उपद्रव पर नई-नई एण्टीबायोटिक दवाइयों से नियंत्रण रखा गया है। भोजन को खराब करने वाले जीवाणुओं को नियंत्रित रखने की नई तकनीकें लगातार खोजी जाती रही हैं। इस तरह के बीज विकसित कर लिये गए हैं जिनके डी.एन.ए. में ही बैक्टीरिया को समाप्त करने के गुण हैं। लेकिन इस लड़ाई का कोई ओर-छोर अभी तक नजर नहीं आ रहा है। जैसे जैसे जीवाणुओं को समाप्त और नियंत्रित

करने की तकनीकें विकसित होती गई हैं वैसे-वैसे जीवाणु भी अपने अंदर परिवर्तन करके नई तकनीक को निष्प्रभावी बनाने का प्रयास करते गए हैं। नई खोजी गई एण्टीबायोटिक दवाई कुछ दिन तो प्रभावी रहती हैं इसके बाद जीवाणु अपने भीतर ऐसी शक्ति विकसित कर लेते हैं कि वह दवाई निष्प्रभावी हो जाती है।

ताजा संकट जिससे आप लोग परिचित हैं डेरी उद्योग से संबंधित है। डेरी उत्पादों को खराब करने वाले जीवाणुओं के भीतर अचानक 'म्यूटेशन' हुआ है और ये जीवाणु बहुत ताकतवर हो गये हैं। ये जीवाणु जिस कच्चे दूध को तीन से चार घंटे में खराब करते थे उसे अब दस मिनिट में खराब करने लगे हैं ।

सभ्यता के आरंभ से ही गाय-भैंस आदि दुधारू पशुओं का दूध मनुष्यों के भोजन का प्रमुख भाग रहा है। हमारे बच्चे इस भोजन के सहारे ही बड़े होते हैं। बीसवी शताब्दी से ही मनुष्य ने दूध और दूसरे डेरी पदार्थों को सुरक्षित रखने के तरीके खोज लिये थे। फ्रेंच जीव विज्ञानी 'लूइस पाश्चर' ने सबसे पहले खोज की थी कि खाने पीने की वस्तुयें जीवाणुओं के कारण खराब होती हैं। इन वस्तुओं को लंबे समय तक सुरक्षित रखने के लिये उन्होंने एक तकनीक की खोज की थी जिसे बाद में उनके सम्मान में 'पाश्चुराइजेशन' नाम दिया गया। इसके अंतर्गत दूध या दूसरे खाद्य द्रव को कुछ सेकन्ड के लिये उच्च तापमान पर रखा जाता है और इसके बाद इसे कम तापमान पर ठंडा करके सुरक्षित रख लिया जाता है। इस तकनीक से कच्चा दूध आठ-दस दिन तक सुरिक्षित रहता था। इस खोज के पहले तक दूध को ज्यादा समय तक सुरक्षित रखना एक चुनौती थी। दूध उत्पादन करने वाले किसानों को अपना माल औने-पौने दामों पर व्यापारियों को बेचना पड़ता था। लुइस पाश्चर की खोज के बाद दूध को लंबे समय तक सुरक्षित रखा जाने लगा। लेकिन इस तकनीक से दूध में उपस्थित जीवाणु तो समाप्त हो जाते हैं लेकिन जीवाणुओं के स्पोर समाप्त नहीं होते हैं जो उचित परिस्थितियाँ मिलते ही जीवाणु में परिवर्तित हो जाते हैं।

इक्कीसवीं शताब्दी में साठवे दशक तक अल्ट्रा हाई तापमान तकनीक विकसित हो गयी थी जिसमें दूध को लगभग 140 डिग्री सेण्टीग्रेड पर दो सेकेंड के लिये गरम किया जाता है । इस प्रक्रिया से दूध में स्थित जीवाणुओं के स्पोर भी समाप्त हो जाते हैं । इस दूध की पैकिंग जीवाणू रहित वातावरण और पात्र में करने से ये दूध लगभग छह माह तक सुरक्षित रहने लगा था। बाईसवी शताब्दी तक तकनीक ने और विकास किया और दूध को आसानी से एक वर्ष तक सुरक्षित रखना संभव हो गया । इस तकनीक के कारण सारी पृथ्वी और चाँद पर दूध की कोई कमी नहीं रही है।

इन सभी तकनीकों का आधार यह है कि कच्चा दूध खुले वातावरण में लगभग तीन से चार घंटे तक सुरक्षित बना रहता है। इतने समय में हम दूध को सुरक्षित रखने की तकनीकों को इस्तेमाल कर लेते हैं। अभी हाल में दूध को खराब करने वाले जीवाणुओं के जीन्स में अचानक जो म्यूटेशन हुआ है उससे वे इतने शक्तिशाली हो गये हैं कि खुले वातावरण में दूध को बहुत तेजी से खराब करते हैं। कच्चा दूध खुले वातावरण में अगले दस मिनिट में ही खराब होने लगा है। हमें इतना समय भी नहीं मिल रहा है कि इसका संरक्षण कर सकें। इस घटना के कारण सारी पृथ्वी और चंद्रमा पर दूध की गंभीर कमी हो गई है। इसी समस्या का हल निकालने के लिये आज ये सम्मेलन बुलाया गया है।

बैठक में मौजूद अधिकतर वैज्ञानिक इस समस्या से परिचित थे। इस पर रिसर्च भी हो रही थी। फ्रांस के वैज्ञानिक 'पोपोइ आंद्रे' ने अभी इस विषय पर नई खोज की थी अतः उनको रिसर्च पेपर पढ़ने के लिये बुलाया गया। 'पोपोइ आंद्रे' ने अपनी बात रखी- ''हमारी टीम ने इस समस्या पर जितनी रिर्सच की है उससे यह पता लगा है कि दूध को खराब करने वाले जीवाणुओं के डी.एन.ए. में अचानक इस तरह के परिवर्तन हो गये हैं कि वो जीवाणु पहले से दस गुना अधिक ताकतवर हो गये हैं।

बांग्लादेश के वैज्ञानिक 'अब्दुल मज़ीद' ने पूछा-''आखिर ये सब हो क्यों रहा है?''

'पोपोइ आंद्रे' ने बताया -''हम जानते हैं कि एण्टीबायोटिक के अत्याधिक प्रयोग से जीवाणु अपने भीतर ऐसी क्षमता विकसित कर

लेते हैं कि वो एण्टीबायोटिक से अप्रभावित रहते हैं। इस कारण हमे लगातार नई प्रभावी और ताकतवर एण्टीबायोटिक की खोज करना पड़ी है। ठीक इसी तरह से दूध और दूसरे खाद्य पदार्थों को खराब करने वाले जीवाणुओं के भीतर भी अपने आप ऐसी क्षमता विकसित होती जा रही है कि वो अधिक तापमान तथा केमिकल से अप्रभावित रहते हैं। हाल के वर्षों में अचानक इन जीवणुओं की प्रतिरोध क्षमता में सौ गुना तक इजाफा हो गया है। इसके कारण डेरी उद्योग को इतना समय नहीं मिल पा रहा है कि वो दूध को प्रोसेस कर सकें और वो खराब न हो।

अब रूसी वैज्ञानिक 'अलेक्जेन्डर क्रोमोजोव' की बारी आ गई थी उन्होंने कहा- ''हमारे देश में इस समस्या के हल के लिये जितनी रिसर्च अभी तक की गई हैं उनमें बहुत कम सफलता मिली है। हमारा पूरा ध्यान दुधारू पशुओं के भीतर इस तरह के एण्टीबॉडी बनाने की क्षमता विकसित करने पर है जिससे दूध में इतनी ताकत आ जाए कि वो वातावरण के जीवाणुओं से सफलता पूर्वक काफी समय तक मुकाबला कर ले। अभी तक हमारी अधिकतम सफलता दूध को आधा घंटा तक सुरक्षित रख पाने की है।

इटली के वैज्ञानिक 'निकोली कोण्टी' ने बताया कि उनके देश में इस समस्या का हल इस तरह निकाला गया है कि पशुओं का दूध केवल मशीनों से निकाला जाता है और मशीनों से लगे पाइप लाइनों से यह दूध सीधे प्लान्ट में चला जाता है और दस मिनिट के अंदर ही इस दूध को 'अल्ट्रा हाई ट्रीटमेंट' देकर इसे सुरक्षित कर लिया जाता है।

इस उपाय ने वैज्ञानिकों का ध्यान खींचा और इस पर गंभीर विचार-विमर्श हुआ । निष्कर्ष निकला कि यह उपाय बहुत ही खर्चीला और अव्यावहारिक है। इसे बड़े-बड़े देशों मे सफलता से लागू नहीं किया जा सकता हैं।

अब भारतीय डेरी वैज्ञानिक चमनलाल साहा की बारी आई । उन्होंने अपने देश भारत में इस विषय में हुए रिसर्च से सबको अवगत कराते हुए कहा -''आप सभी जानते हैं कि मनुष्य बहुत पहले से ही अल्ट्रा वायलट किरणों का उपयोग जीवाणु नाशक की तरह करता रहा है। अक्सर जीवाणु अनुसंधान प्रयोगशालाओं में वैज्ञानिक अल्ट्रा वायलट किरणों के प्रयोग से प्रयोगशालाओं को जीवाणुमुक्त बनाया करते हैं। हमने अपने नवीन अनुसंधान से अल्ट्रा वायलेट किरणों की 'वेब लेंग्थ' में बहुत हल्का से परिवर्तन करके उन्हें इतना ताकतवर बना दिया है कि उनकी जीवाणुरोधी क्षमता बहुत बढ़ गई है। दूध देने वाले जानवरों का जिन जगहों पर दूध निकाला जाता है वहाँ बिजली के साधारण प्रकाश के साथ ये अल्ट्रा वायलट जीवाणुरोधी लैम्प भी लगाये जा रहे हैं। जब इस अल्ट्रा वायलट प्रकाश में दूध निकाला जाता है तो वातावरण के जीवाणु दूध को संक्रमित नहीं कर पाते हैं। इसी वातावरण में दूध को ठंडा करके उसे दूध के प्लान्ट तक परिवहन किया जाता है। इस तरह से भारत में दूध को खराब होने से सौ प्रतिशत बचाया जा रहा है।

सभी वैज्ञनिकों ने इस उपाय को ध्यान से सुना और उनके चेहरों से लग रहा था कि उन्हें यह उपाय अच्छा लगा है।

पोलेंड में डेरी व्यवसाय परंपरा से ही बहुत आगे है। पोलेंड के डेरी वैज्ञानिकों ने भी भी इस समस्या पर शोध किया था। वहाँ के वैज्ञानिक 'अनातोली संवास्तरकी' ने अपना पर्चा प्रस्तुत किया -''आप जानते हैं कि पोलेंड में अनेक शताब्दियों से डेरी व्यवसाय फलफूल रहा है । हमारे देश में इस उद्योग पर लगातार अनुसंधान भी होते रहे हैं। जीवाणुओं की शक्ति बढ़ने से उत्पन्न इस समस्या का हल हमने एक जादुई रसायन में खोजा है। हम जानते हैं कि पुराने समय से ही 'फार्मेलीन' नाम के रसायन का उपयोग दूध के सेम्पल को सुरक्षित रखने में किया जाता रहा है। यह रसायन इतना तेज जीवाणुरोधक है कि प्रयोगशालाओं में जीव जंतुओं के मृत शरीर भी इसी रसायन में डुबा कर सुरक्षित रखे जाते हैं। लेकिन यह रसायन मानव शरीर के लिये हानिकारक है। इस लिये इसे उन द्रव्यों में नहीं डाला जा सकता जिनका उपयोग मानव करता है। हमने फार्मालीन से मिलते-जुलते एक नये रसायन की खोज की है जो फार्मेलीन जितना ही ताकतवर है लेकिन मानव शरीर पर इसका कोई दुष्प्रभाव नहीं है ।यह रंग हीन और गंध हीन भी है। दुधारू पशु के शरीर से दूध निकालते ही इस रसायन की दो बूँदें दूध में डाल दी जाती हैं। इसके बाद इस दूध पर जीवाणुओं का प्रभाव तीन घंटे तक नहीं होता है। यह समय इतना है कि दूध को दूसरी संरक्षण विधियों से संरक्षित कर लिया जाता है।

चीन के वैज्ञानिक 'ली शुन' ने पूछा -''इस रसायन का मानव शरीर पर क्या असर होता है ? इस बारे में आपके देश में क्या क्या परीक्षण हो चुके हैं?

संवास्तरकी ने बताया-''इस रसायन की खोज हाल ही में हुई है इसलिये केवल अल्प समय के उपयोग से मानव शरीर पर होने वाले प्रभावों का परीक्षण किया जा सका है। इस रसायन के अल्प समय तक प्रयोग करने से मानव शरीर पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पाया गया है। लंबे समय तक इस रसायन का उपयोग करने से मानव शरीर पर होने वाले प्रभावों पर अनुसंधान होना बाकी है।

'निकोली कोण्टी' ने कहा -''तब तो इस रसायन का उपयोग दूध में करना अभी खतरे से खाली नहीं माना जा सकता है। जब तक मानव शरीर पर इसके दीर्घकालीन प्रभावों का अध्ययन न कर लिया जाए तब तक इसके उपयोग की अनुशंसा संयुक्त राष्ट्र परिषद को नहीं करना चाहिए।

सभी वैज्ञानिकों के प्रजेन्टेशन पूरे हो जाने के बाद विषय पर खुली चर्चा आरंभ हुई। सभी वैज्ञानिकों ने एक स्वर से माना कि वर्तमान में जो अनुसंधान हुए हैं उनमें सबसे सुरक्षित और व्यावहारिक उपाय भारतीय वैज्ञानिक चमनलाल साहा द्वारा बताया गया है। नयी खोजी गईं अल्ट्रावॉयलट किरणों के लैम्प बहुत सस्ते में बनाये जा सकते हैं। इन्हें प्रत्येक पशुशाला में आसानी से जानवरों के बाड़े में लगाया भी जा सकता है। इन किरणों का कोई गंभीर दुष्प्रभाव भी मानव शरीर पर नहीं होता है। चर्चा में यह आम सहमति बनी कि जब तक और अधिक व्यावहारिक और सस्ते उपाय की खोज न हो जाए तब तक चमनलाल साहा द्वारा खोजे उपाय का सारे विश्व में उपयोग किया जाए।

सम्मेलन के अध्यक्ष 'माइकल जेम्स' ने जब इस निर्णय की घोषणा की तो सारा हाल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा। तभी 'पोपोइ आंद्रे' ने खड़े होकर प्रस्ताव रखा - ''नई खोजी गईं ऊर्जा किरणें अभी तक अनाम है इसलिये मेरा प्रस्ताव है कि इन किरणों का नाम इन के खोजकर्ता चमनलाल साहा के नाम पर 'साहा रेज' रखा जाए। सभी ने जोर-जोर से तालियाँ बजा कर इस प्रस्ताव का समर्थन किया। इस गंभीर विषय पर आगे और अनुसंधान करने और अगले वर्ष फिर से वैज्ञानिकों का सम्मेलन आयोजित करने के निर्णय के साथ सम्मेलन समाप्त घोषित किया गया।

ksuresh6290@gmail.com

कंट्रोल सिस्टम इंजीनियरिंग

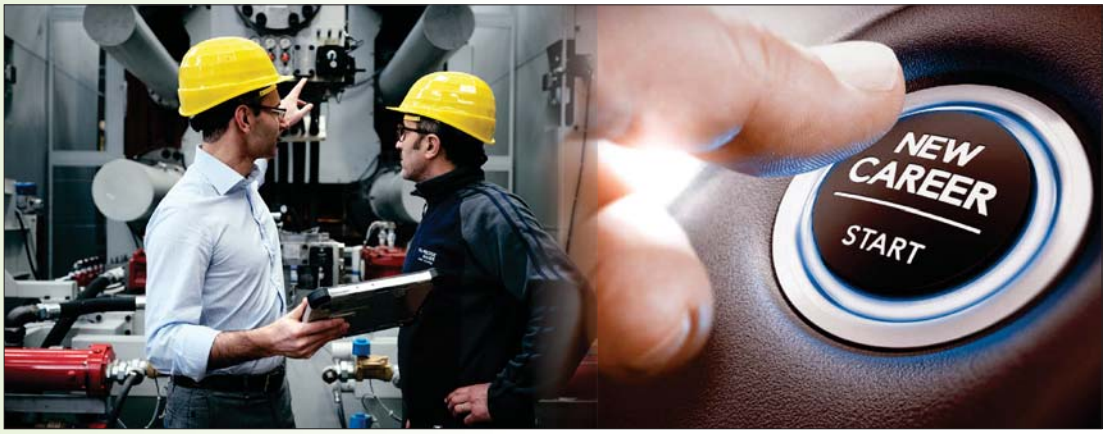

संजय गोस्वामी

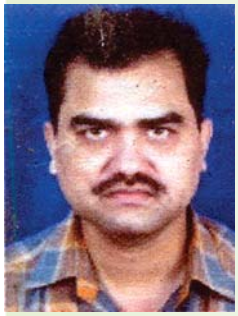

संजय गोस्वामी विगत पंद्रह वर्षों से विज्ञान लेखन से जुड़े हैं आपने हिन्दी विज्ञान के क्षेत्र में तीन सौ से अधिक कॅरियर लेख लिखे हैं जो विज्ञान विषयक होते हैं। 'इलेक्ट्रॉनिकी आपके लिये' में वे विगत लगभग पांच वर्षों से शृंखलाबद्ध लिख रहे हैं। इसके अतिरिक्त विज्ञान लेख, विज्ञान समाचार, विज्ञान कविता, विज्ञान रपट, विज्ञान समीक्षा आदि का लेखन और प्रकाशन हुआ है। कई पुरस्कारों से सम्मानित संजय गोस्वामी हिन्दी विज्ञान साहित्य परिषद्, भा.प.अ. केन्द्र, मुंबई के कार्यकारी सदस्य हैं। आप इन दिनों मुंबई में रहकर हिन्दी विज्ञान पत्रिका में लेखन एवं संपादन से संबद्ध हैं।

नियंत्रण प्रणाली इंजीनियरिंग, इंजीनियरिंग की एक शाखा है जो किसी प्रणाली या यंत्र के नियंत्रण सिद्धांत से संबंधित है, एक प्रणाली को जब डिजाइन किया जाता है तब उसे चलाने के लिए एक नियंत्रित तरीका अपनाया जाता है। जो सुरक्षा मानकों के आधार पर होता है इस प्रकार नियंत्रण इंजीनियरिंग डायनेमिक सिस्टम की एक विविध श्रेणी से संबंधित है जिसमें मानव और तकनीकी इंटरफेस शामिल हैं। एक प्रणाली के कंट्रोल सिस्टम का विश्लेषण करने के लिए उपयोग किए जाने वाले नियंत्रण प्रणाली और परीक्षण संकेतों के लिये उपकरण की जानकारी महत्वपूर्ण है।

आज उद्योग में उद्योग नियंत्रण एवं मापन का कार्य बढ़ चुका है, उद्योग को चलाने एवं नियंत्रण हेतु कंट्रोल सिस्टम अभियंत्रण की भूमिका अहम है। नियंत्रण अभियांत्रिकी आज के परिवेश में इलेक्ट्रीकल, इलेक्ट्रॉनिकी संगणक एवं अभियांत्रिकी का मिला जुला क्षेत्र है, साथ ही गणित की जानकारी भी कंट्रोल सिस्टम के क्षेत्र में आवश्यक है जब उद्योग चालू स्थिति में रहता है तो ताप, दाब यथागति की जानकारी एवं उसे नियंत्रण करने हेतु आवश्यक उपकरण की आवश्यकता होती है ताप मापने के क्षेत्र में उष्ण पदार्थों का ताप कौन से तापमापी से ज्ञात होगा या उसके लिए कौन सा उच्च ताप मापक यंत्र व्यवहार में लाए जा सकते हैं की जानकारी कंट्रोल सिस्टम के सिद्धांत से ज्ञात होता है। इनमें पदार्थों के भौतिक गुणों का अध्ययन भी किया जाता है। आजकल आधुनिक ताप मापक यंत्रों का प्रचलन उद्योग में काफी तेजी से हो रहा है। ताप मापने के बाद उसकी सूचना नियंत्रण कक्ष को सेंसर के द्वारा दी जाती है। ताप का धातु-प्रसार पर प्रभाव, ताप के परिवर्तन से धातु के विद्युत संचालन मात्रा में परिवर्तन एवं धातु का दवणोक की जानकारी है। तापक्रम का मापन तापोचार उद्योग में काफी मायने रखता है। जिसमें थर्मोकपुल के साथ-साथ पी.आई.डी. कंट्रोलर भी लगे रहते हैं। स्वचालित वाशिंग मशीन, ट्रैफिक सिग्नल प्रणाली, घर हीटिंग सिस्टम (प्रतिक्रिया और नियंत्रण के बिना), खुले लूप नियंत्रण प्रणाली के उदाहरण हैं।

पी.आई.डी. कंट्रोलर नियंत्रक - आनुपातिक(पी), इंटीग्रल(आई) और व्युत्पन्न(डी) ब्लॉक, पीआईडी नियंत्रक डिजाइन के उदाहरण। औद्योगिक प्रक्रमों के नियंत्रण में बहुतायत में प्रयोग किया जाने वाला कंट्रोलर (या कंपन्सेटर) है। इसे ''पीआईडी नियंत्रक'' इसलिये कहते हैं क्योंकि इसका आउटपुट त्रुटि-संकेत (एरर) से व्युत्पन्न तीन पदों के योग के बराबर होता है। इनमें से पहला त्रुटि के समानुपाती, दूसरा त्रुटि के समाकलन (इंटीग्रेशन) के समानुपाती और तीसरा त्रुटि के अवकलज

$$u = K_p e + K_i \int e dt + K_b \frac{de}{dt}$$

के समानुपाती होता है। वांछित आउटपुट (संदर्भ संकेत) एवं आउटपुट के वर्तमान मान का अंतर 'त्रुटि' कहलाता है। इस नियंत्रक में निहित तीन समानुपाती नियतांकों (समानुपाती नियतांक KP, समाकलन नियतांक KI तथा अवकलज नियतांक KD) का समुचित चुनाव करके नियंत्रण प्रणाली को वांछित रूप में नियंत्रित किया जाता है। किसी चालू तंत्र में KP, KI, KD के मान गणना द्वारा सिमुलेशन द्वारा निकाल सकते हैं।

आर.टी.डी., थर्मोस्टर, विकिरण उच्च ताप मापक तथा आलोक उच्च ताप मापक यंत्र होते हैं जो ताप- विद्युत प्रभाव से न ज्ञात कर दवण एवं विकिरण के सिद्धांत से ज्ञात होता है। ताप मापन के साथ-साथ मानांकन (Calibration) का भी सही जानकारी जैसे तापयुग्मों (थर्मोकपुल) का मानांकन अल्पमूल्य धातुओं के तापयुग्मों का मानांकन उसी कोटि के आदर्ष तापयुग्म द्वारा किया जाता है। यह कोर्स छात्रों को नियंत्रण प्रणाली इंजीनियरिंग के मूल सिद्धांतों से परिचित कराने के लिए डिजाइन की गई है, एक कंट्रोल सिस्टम इंजीनियर को उद्योग को नियंत्रित करने हेतु, कंट्रोल सिस्टम, लाप्लास ट्रांसफॉर्म रिव्यू और सिस्टम रिप्रेजेंटेशन, फिजिकल सिस्टम्स एंड कंट्रोल सिस्टम्स मॉडलिंग, टाइम डोमेन एनालिसिस, स्टैबिलिटी और स्टेटी स्टेट त्रुटि और आवृत्ति प्रतिक्रिया विश्लेषण आदि की जानकारी होनी चाहिए। नियंत्रण प्रणाली इंजीनियरिंग में एक कंट्रोल इंजीनियर, और ओपन-लूप सिस्टम और क्लोज-लूप सिस्टम के बीच तुलना कैसे की जाये है, नियंत्रण प्रणाली की समस्याओं को हल करने के लिए लाप्लास ट्रांसफॉर्म टेबल का उपयोग एक सरल तरीका है। यह मॉडलिंग के लिए एक एकीकृत पद्धति के रूप में उपयोग किया जाता है और विस्तृत प्रणाली का विश्लेषण करता है। संबंधित समस्याओं को हल करने में मैटलैब का उपयोग तथा कई प्रणालियों के मॉडलिंग कैसे करें इसका विस्तृत अध्ययन कंट्रोल सिस्टम इंजीनियरिंग में किया जाता। कंट्रोल इंजीनियर, उपकरण के भौतिक और रासायनिक गुणों को मापते और उनका विश्लेषण करते हैं। ऐसे उपकरण जो प्रवाह, ऊर्जा, स्थिति, गति और अन्य चर को प्रभावित करते हैं। नियंत्रण तत्व उपकरणों और उपकरणों के बीच वायरिंग नियंत्रण और सूचना प्रणाली का वैचारिक प्रणाली डिजाइन सुरक्षा और खतरों, सुरक्षा और विनियामक अनुपालन का विश्लेषणय मानक, टेम्प्लेट और दिशानिर्देश स्थापित करना कंट्रोल सिस्टम इंजीनियर का काम है।

पाठ्यक्रम

कंट्रोल सिस्टम इंजीनियरिंग में डिग्री पाठ्यक्रम मुख्यतः आईआईटी, एनआईटी और प्राइवेट इंजीनियरिंग कॉलेजों में कराया जाता है, एककंट्रोल सिस्टम इंजीनियर, उद्योग नियंत्रण एवं मापन, कंट्रोल सिस्टम इंजीनियरिंग डिजाइन, नियंत्रण, डेवल्पमेंट और सॉफ्टवेयर हार्डवेयर जैसे सभी क्षेत्रों में भारत दुनिया में सबसे सस्ती कीमतों पर नियंत्रण प्रॉडक्ट व सेवाएं मुहैया करवाता है। वजह है यहां मौजूद बेहद काबिल कंट्रोल सिस्टम इंजीनियर, उभर रही भारतीय कंपनियों के लिए भी कंट्रोल सिस्टम इंजीनियरिंग में आकर्षक अवसर मौजूद हैं। यांत्रिक, इलेक्ट्रॉनिक, और उद्योग नियंत्रण से जुड़ी समस्याओं के समाधान के लिए ये प्रोफेशनल शोध कार्यों को भी अंजाम देते हैं। कम्युनिकेशन इक्वपमेंट को इंस्टाल करने एवं मरम्मत करने का काम भी कंट्रोल सिस्टम इंजीनियरिंग इंजीनियर ही देखते हैं। वे यकीनी बनाते हैं कि इंस्टाल व मरम्मत किये गये सिस्टम एयरक्राट निर्माता कंपनियों द्वारा तय जरूरतों एवं विशेषता मानकों पर खरे हैं। कंट्रोल सिस्टम में इलेक्ट्रॉनिक कम्युनिकेशन, पेनल्स-रखरखाव और उत्पादन, और कम्प्यूटर जैसी प्रणालियों की डिजायनिंग, खरीद, टेस्टिंग और मानकीकरण के मामलों में कंट्रोल सिस्टम इंजीनियर पूरा योगदान देते हैं।

नियंत्रण इंजीनियरिंग का उपयोग किए गए विभिन्न तरीकों के आधार पर अपना वर्गीकरण है। नियंत्रण इंजीनियरिंग के प्रकार. नियंत्रण इंजीनियरिंग के मुख्य प्रकारों में आधुनिक नियंत्रण इंजीनियरिंग, इष्टतम नियंत्रण इंजीनियरिंग, अनुकूली नियंत्रण इंजीनियरिंग, रैखिक नियंत्रण इंजीनियरिंग, गैर-रेखीय नियंत्रण इंजीनियरिंग एनालॉग या सतत नियंत्रण इंजीनियरिंग, डिजिटल नियंत्रण

नियंत्रण प्रणाली इंजीनियरिंग में एक कंट्रोल इंजीनियर, और ओपन-लूप सिस्टम और क्लोज-लूप सिस्टम के बीच तुलना कैसे की जाये है, नियंत्रण प्रणाली की समस्याओं को हल करने के लिए लाप्लास ट्रांसफॉर्म टेबल का उपयोग एक सरल तरीका है। यह मॉडलिंग के लिए एक एकीकृत पद्धति के रूप में उपयोग किया जाता है और विस्तृत प्रणाली का विश्लेषण करता है। संबंधित समस्याओं को हल करने में मैटलैब का उपयोग तथा कई प्रणालियों के मॉडलिंग कैसे करें इसका विस्तृत अध्ययन कंट्रोल सिस्टम इंजीनियरिंग में किया जाता। कंट्रोल इंजीनियर, उपकरण के भौतिक और रासायनिक गुणों को मापते और उनका विश्लेषण करते हैं। ऐसे उपकरण जो प्रवाह, ऊर्जा, स्थिति, गति और अन्य चर को प्रभावित करते हैं। नियंत्रण तत्व उपकरणों और उपकरणों के बीच वायरिंग नियंत्रण और सूचना प्रणाली का वैचारिक प्रणाली डिजाइन सुरक्षा और खतरों, सुरक्षा और विनियामक अनुपालन का विश्लेषणय मानक, टेम्प्लेट और दिशानिर्देश स्थापित करना कंट्रोल सिस्टम इंजीनियर का काम है।

कोर्सेज

- *बी.ई./बीटेक (कंट्रोल इंजीनियरिंग)*
- *बीटेक-औद्योगिक नियंत्रण और इंस्ट्रूमेंटेशन*
- *बी.ई./बीटेक -नियंत्रण और स्वचालन इंजीनियरिंग*
- *पी.जी. डिप्लोमा इन इंस्ट्रूमेंटेशन एंड कंट्रोल*
- *बी.ई. -इलेक्ट्रॉनिक नियंत्रण इंजीनियरिंग*
- *एम.टेक. (कंट्रोल इंजीनियरिंग)*
- *एमटेक/एमई -नियंत्रण और स्वचालन*
- *एम.टेक.-नियंत्रण और इंस्ट्रूमेंटेशन इंजीनियरिंग*
- *पी.एचडी- नियंत्रण इंजीनियरिंग*
- *पी.एचडी- नियंत्रण और इंस्ट्रूमेंटेशन इंजीनियरिंग*
-

पात्रता

बी.ई. नियंत्रण इंजीनियरिंग में प्रवेश के लिए -भौतिकी, रसायन विज्ञान और गणित के साथ न्यूनतम 55% अंकों के साथ XII(10+2) या समकक्ष परीक्षा उत्तीर्ण किया हो। कुछ प्रतिष्ठित कॉलेज जैसे आईआईटी, और एनआईटी, राजकीय इंजीनियरिंग कॉलेज/संस्थान में प्रवेश के लिए प्रवेश परीक्षा आयोजित करते हैं।

इंजीनियरिंग शामिल हैं।

कोर्स

नियंत्रण इंजीनियरिंग का कोर्स विद्युत, यांत्रिक और दोनों का संयोजन है इसमें बैचलर ऑफ इंजीनियरिंग तथा बैचलर ऑफ टेक्नॉलॉजी का कोर्स है अंडरग्रेजुएट नियंत्रण इंजीनियरिंग माप से संबंधित इंजीनियरिंग का विषय है। इस कोर्स में छात्रों को नियंत्रण उत्पादन प्रक्रियाओं में मापन, व्यापार कौशल, और उद्योग विशिष्ट समस्या को सुलझाने के लिये कौशल प्रदान कराता है। छात्र सुरक्षा अनुप्रयोग जैसे, डीसी इलेक्ट्रॉनिक्स और मेट्रोलॉजी, एसी में अत्यधिक कुशलता पाकर नियंत्रण इंजीनियरिंग में जॉब पा सकते हैं जहाँ औद्योगिक नियंत्रण की जरूरत होती है इसके अलावा इसमें इलेक्ट्रॉनिक्स और फोटोनिक्स, औद्योगिक इलेक्ट्रिकल सिस्टम और मोटर्स, डिजिटल सिस्टम और माइक्रो कंट्रोलर, हाइड्रोलिक्स और न्यूमैटिक्स और डिजाइन ड्राटिंग आदि विषयों का अध्ययन किया जाता है इंस्ट्रूमेंटेशन इंजीनियरिंग के डिग्री धारकों को गणित, रैखिक एकीकृत सर्किट, औद्योगिक प्रबंधन, अनुप्रयोग प्रोग्रामिंग, मापन, मेट्रोलॉजी, ट्रांसड्यूसर, मैकेनिकल माप, औद्योगिक नियंत्रण, एनालॉग इलेक्ट्रॉनिक्स, डिजिटल इलेक्ट्रॉनिक्स, सिग्नल और सिस्टम, इलेक्ट्रिकल और इलेक्ट्रॉनिक माप, सिस्टम और प्रोसेस कंट्रोल आदि विषयों का अध्ययन किया जाता है बैचलर ऑफ टेक्नॉलॉजी-नियंत्रण इंजीनियरिंग में नियंत्रण प्रणाली, गणितीय उपक्रमात्मक-जटिल चर, लाप्लास रूपांतरण। मानक इनपुट और शून्य, विभिन्न इनपुट्स का प्रभाव, बीआईबीओ स्थिरता की धारणा, शून्य का प्रभाव, बंद लूप ट्रांसफर फंक्शन, डायनामिक परफॉर्मेंस स्पेसिफिकेशन, फर्स्ट ऑर्डर सिस्टम, अंडरपम्प्ड सेकंड ऑर्डर सिस्टम का यूनिट स्टेप रिस्पॉन्स, राइज टाइम का कॉन्सेप्ट, पीक टाइम, अधिकतम पीक ओवरशूट और सेटलिंग टाइम, स्थिरता मानदंड, नियंत्रण डिजाइन में उपयोग, नियंत्रक का डिजाइन, त्रुटियों का विश्लेषण। रूट लोकस और नियंत्रण डिजाइन में इसके अनुप्रयोग आदि विषयों का अध्ययन भी किया जाता है। इसके अलावा नियंत्रण सेंसर के डिजाइन में फ्रिक्वेंसी रिस्पांस, बोड प्लॉट, न्यक्विस्ट प्लॉट, स्थिरता मानदंड, सापेक्ष स्थिरता, आवृत्ति प्रतिक्रिया के माध्यम से नियंत्रण प्रणाली का डिजाइन - लीड, और लैग- केस स्टडीज के बारे में बताया जाता है । कोर्स की अवधि चार साल है।

मुख्य विषय

विभिन्न विश्वविद्यालयों और कॉलेजों द्वारा निर्धारित नियंत्रण इंजीनियरिंग के पाठ्यक्रम में इंजीनियरिंग भौतिकी, इंजीनियरिंग गणित, इंजीनियरिंग सामग्री, रसायन विज्ञान, कम्प्यूटर प्रोग्रामिंग, माप और उपकरण, संचार कौशल, इंजीनियरिंग सामग्री, सामग्री विज्ञान, एनालॉग इलेक्ट्रॉनिक्स सर्किट, सेंसर और ट्रांसड्यूसर, माप और उपकरण, एनालॉग इलेक्ट्रॉनिक्स सर्किट, सेंसर और ट्रांसड्यूसर, संख्यात्मक विश्लेषण, गतिशील प्रक्रिया और नियंत्रण, उद्यमिता विकास, डिजिटल इलेक्ट्रॉनिक्स नियंत्रण प्रणाली, औद्योगिक नियंत्रण, न्यूमेरिकल एनालिसिस, औद्योगिक नियंत्रण, नियंत्रण प्रणाली विद्युत इंजीनियरिंग, माइक्रोप्रोसेसर अनुप्रयोग, डिजिटल सिग्नल प्रोसेसिंग, माइक्रोप्रोसेसर के अनुप्रयोग, चिकित्सा उपकरण, डेटा अधिग्रहण और टेलीमेटरी, पावर इलेक्ट्रॉनिक्स, माइक्रोकंट्रोलर, नियंत्रण सिस्टम डिजाइन, विश्लेषणात्मक उपकरण, प्रक्रिया नियंत्रण, 4 ए-सी इलेक्टिव, पर्यावरण नियंत्रण इंजीनियरिंग, पल्स और डिजिटल स्विचिंग सर्किट, विद्युत प्रणालियों के मूल तत्व, बायोइलेक्ट्रिक सिग्नल प्रोसेसिंग, माइक्रोवेव नियंत्रण, औद्योगिक संयंत्रों का केस स्टडी, रोबोटिक्स इंजीनियरिंग, ऑप्टो-इलेक्ट्रॉनिक उपकरण, अल्ट्रासोनिक उपकरण, विद्युत चुम्बकीय सिद्धांत आदि विषयों का अध्ययन किया जाता है।

अवसर

कंट्रोल सिस्टम इंजीनियरिंग के क्षेत्र भारत में सबसे अधिक संभावना, डीआरडीओ (रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन), एचएएल (हिंदुस्तानकंट्रोल सिस्टम लिमिटेड), एनएएल (नेशनल कंट्रोल सिस्टम लैब्स), इसरो (भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन), भारतीय सेना के साथ ही नागरिक उड्डयन विभाग, ऑटोमोटिव, विनिर्माण, तेल और गैस निष्कर्षण, रोबोटिक्स आदि संगठनों/उद्योगों में हैं बीटेक (कंट्रोल इंजीनियरिंग) प्रोफेशनल

को साधन और नियंत्रण इंजीनियर, प्रक्रिया नियंत्रण इंजीनियर,सिस्टम अभियंता, ऑटोमेशनसिस्टम इंजीनियर, विनिर्माण स्वचालन अभियंता आदि पदों पर नियुक्त किया जाता है। औद्योगिक नियंत्रण हेतु सभी उद्योग में कंट्रोल रूम रहते हैं जहाँ ताप, दाब यथा गति की जानकारी मिलती है एवं उसे मापने हेतु कंट्रोल सिस्टम कंपनियों में कंट्रोल सिस्टम इंजीनियर के लिये रोजगार की अधिक संभावना है।

इंस्ट्रूमेंटेशन और इलेक्ट्रिकल इंजीनियर बीटेक (कंट्रोल इंजीनियरिंग) प्रोफेशनल की इन्फोटेक एंटरप्राइजेज लिमिटेड में असिस्टेंट डिजाइन ट्रेनी, असिस्टेंट डिजाइन इंजीनियर और सॉटवेयर इंजीनियर ट्रेनी के पदों पर नियुक्ति की जाती है। उद्योग नियंत्रण एवं मापन, इलेक्ट्रिकल सिस्टम एनालिसिस और हार्डवेयर मॉडलिंग से जुड़े क्षेत्रों पर काम करने की अभ्यार्थी को जिम्मेवारी दी जाती है। निशेपरो, अल्टरन इंडिया, अपोलो माइक्रोसिस्टम्स, गुडरिच कंट्रोल सिस्टम, में भी डिजाइन इंजीनियर, आईक्वेस्ट कंसल्टेंट्स, सॉटवेयर मैनेजर और डेवलपर के तौर पर ग्रेजुएटकंट्रोल सिस्टम इंजीनियर की नियुक्त किया जाता हैं। वे उद्योग और इसकी संबद्ध सहायता सेवाओं में नियंत्रण, परिचालन करने वाली कंपनियों के लिए एंड-टू-एंड आईटी सॉटवेयर विकसित करते हैं , सरकारी क्षेत्र की शीर्ष संस्थाओं जैसे इंडियन इंस्टीच्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी से बीटेक किये स्नातकों के लिए कंट्रोल सिस्टम में अवसर मौजूद हैं। कंट्रोल सिस्टम में बीटेक करने के बाद इनमें इंजीनियर या वैज्ञानिक के तौर पर ज्वाइन किया जा सकता है। आईआईटी भी प्रोफेसर के पद पर कंट्रोल सिस्टम इंजीनियर/प्रोजेक्ट फैलोशिप स्नातकों के तौर पर नियुक्त करती है। कंट्रोल सिस्टम इंडस्ट्रीज में अर्धचालक और अन्य इलेक्ट्रॉनिक घटक का निर्माण, संचार उपकरणों का निर्माण,नेविगेशनल, इलेक्ट्रोमेडिकल और नियंत्रण उपकरणों के निर्माण उद्योग में नियंत्रण, मरम्मत और ओवरहाल की सुविधाएं के लिये इंजीनियर का काम कर सकते हैं. विदेशों में काम करने के लिए कंट्रोल सिस्टम इंजीनियरिंग में अवसरों की कोई कमी नहीं है।

सैलरी

कंट्रोल सिस्टम इंजीनियरिंग के फील्ड में शुरुआती सालाना सैलरी पैकेज 10-12 लाख रुपये होता है। कुछ वर्ष का वर्क एक्सपीरियंस हासिल करने के बाद या फिर बड़ी प्राइवेट कंपनियों में अच्छी सैलरी मिलती है। गवर्नमेंट सेक्टर में डीआरडीओ की अनुसंधान प्रयोगशाला, भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, एचएएल प्रयोगशाला में वैज्ञानिक/इंजीनियर के पद पर नियुक्त होते हैं, जिन्हे मासिक वेतन 80,000/- से 1,00,000/- रुपये तक सैलरी मिलता है।

मुख्य संस्थान

- बनारस हिंदू विश्वविद्यालय (बीएचयू), वाराणसी।
- पेट्रोलियम एंड एनर्जी स्टडीज विश्व-विद्यालय, देहरादून।
- भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, मुंबई।
- दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
- मद्रास विश्वविद्यालय, चेन्नई।
- इंडियन स्कूल ऑफ माइंस, धनबाद।
- जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
- भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर।
- आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और रोबोटिक्स प्रौद्योगिकी संस्थान, बंगलोर।
- राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, पटना।
- बिरला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी एण्ड साइंस, पिलानी।
- जादवपुर विश्वविद्यालय, कोलकाता।
- पीएसजी कॉलेज, कोयम्बटूर।
- श्री सत्य साई इंस्टिट्यूट, चेन्नई।
- एसआरएम विश्वविद्यालय, कांचीपुरम।
- बिट्स, मेसरा।
- आंध्र विश्वविद्यालय, विशाखापट्टनम।
- भारती विद्यापीठ कॉलेज ऑफ इंजीनिय-रिंग, मुंबई।
- अन्ना विश्वविद्यालय तिरुचिरापल्ली-बीआईटी कैम्पस, तिरुचिरापल्ली।
- जादवपुर विश्वविद्यालय, कोलकाता।

goswamisanjay80@gmail.com

13 सितम्बर 1931 में जन्में शिवगोपाल मिश्र एम.एस-सी, डी.फिल, साहित्य रत्न में शिक्षित डॉ. मिश्र विज्ञान परिषद् प्रयाग इलाहाबाद के प्रधानमंत्री हैं। वे शीलाधर मृदा विज्ञान शोध संस्थान के निदेशक भी रहे। उन्होंने कई विज्ञान कोश व ग्रंथों की रचना की जिसमें हिन्दी में 26 तथा अंग्रेजी में 11 पुस्तकों सहित 5 पाठयपुस्तकें, नौ साहित्यिक पुस्तकें, महाकवि निराला पर तीन पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। आपको आत्माराम पुरस्कार, भारत भूषण सम्मान आदि से विभूषित किया गया है।

विज्ञान को समझने-समझाने के लिए हिन्दी विज्ञान लेखन के क्रमिक विकास का विहंगावलोकन आवश्यक है। वस्तुतः ऐसी ही सोच के कारण हिन्दी विज्ञान लेखन के भूत, वर्तमान तथा भविष्य विषयक यह पुस्तक गम्भीरता से विचार करके रोचक तरीके से लिखी गई है।

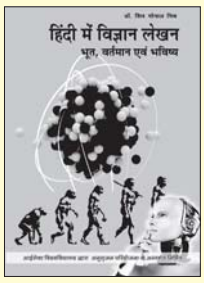

उपछाया चन्द्र ग्रहण

इरफॉन ह्यूमन

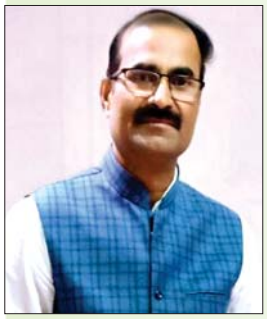

डॉ. इरफान ह्यूमन विगत पच्चीस वर्षों से 'साइंस न्यूज एण्ड व्यूज़' मासिक विज्ञान पत्रिका का संपादन व प्रकाशन कर रहे हैं। आप विज्ञान लोकप्रियकरण कार्यक्रमों के माध्यम से देशभर में वैज्ञानिक जागरुकता के लिए प्रयासरत हैं। आपके एक हजार से अधिक लेख प्रकाशित हुए हैं, आकाशवाणी से अनेक विज्ञानवार्ताओं का प्रसारण हुआ है, विज्ञान धारावाहिक लेखन तथा विज्ञान डाक्यूमेंट्री फिल्मों के निर्माण में आपका बड़ा योगदान है। मुंबई में साइंस फिल्म फेस्टिवल आपकी फिल्में प्रदर्शित हुई हैं। विज्ञान लेखन तथा विज्ञान लोकप्रियकरण के लिए आपको कई सम्मान प्राप्त हैं तथा कई वैज्ञानिक संस्थाओं के मानद हैं। वर्तमान में आप शाहजहाँपुर उ.प्र. में निवासरत हैं।

जनवरी माह में रात के आकाश में क्वाड्रंटिड्स उल्कावर्षा के दर्शन किये जा सकते हैं। रात में कभी-कभी आकाश में तेज़ी से कोई जलती हुई वस्तु एक ओर से दूसरी ओर अथवा पृथ्वी पर गिरती दिखती है, वास्तव ये खगोलीय पिण्ड उल्का (Meteor) होतीं हैं, जिन्हें आम बोलचाल में टूटते तारे भी कहते हैं। प्रायः रात्रि को उल्काएँ रात्रि आकाश में देखी जा सकती हैं, किंतु इनमें से पृथ्वी पर गिरने वाले पिंडों की संख्या बहुत कम होती है लेकिन एक विशेष समयावधि में इनकी संख्या बढ़ जाती है, तब इसे उल्कावर्षा (Meteor Shower) कहते हैं।

क्वाड्रंटिड्स उल्कावर्षा आमतौर पर 28 दिसंबर के अंत और 12 जनवरी के बीच सक्रिय रहती है और 3 से 4 जनवरी के आसपास अपने चरम पर होती है। अन्य उल्का वर्षा के विपरीत यह दो दिनों तक अपने चरम पर रहती है। 3-4 जनवरी को होने वाली चतुर्भुज उल्का वर्षा (Quadrantids Meteor Shower) एक ऐसी ही उल्का वर्षा है, जिसमें अपने चरम पर प्रति घंटे 120 तक उल्काएं पृथ्वी पर गिरते दिखाई देंगी। ऐसा माना जाता है कि ये उल्कावर्षा "2003 ईएच 1" के रूप में जाना जाने वाला विलुप्त धूमकेतु द्वारा छोड़े गये मलबे की धूल है। इस धूमकेतु को वर्ष 2003 में खोजा गया था। इस उल्का वर्षा का मध्यरात्रि के बाद सबसे अच्छा दृश्य अंधेरे स्थान से दृष्टिगोचर होगा। उल्कापिण्ड नक्षत्र ग्वाला या बूटीस (Bootes constellation) से विकिरित होते दृष्टिगोचर होंगे। लेकिन ये रात्रि आकाश में आपको कहीं से भी गिरते दिखाई दे सकते हैं।

क्वाड्रन्स मुरालीस (Quadrans Muralis) को 1922 में इंटरनेशनल एस्ट्रोनॉमिकल यूनियन (IAU) द्वारा निकाले गए नक्षत्रों की एक सूची से इस नक्षत्र को निकाल दिया गया था, लेकिन क्योंकि पहले ही इस उल्कावर्षा का नाम क्वाड्रेंस मुरली के नाम पर रखा गया था, इसलिए इसका नाम नहीं बदला गया। आधुनिक तारामंडल, बूटीस के बाद क्वाड्रंटिड्स को कभी-कभी बूटिड्स भी कहा जाता है। आई.एम.ओ. (अंतर्राष्ट्रीय उल्का संगठन) की भविष्यवाणी की है कि ये उल्कावर्षा अपने चरम पर ४ जनवरी, 2020 को 8 घंटे के यूनिवर्सल समय पर होगी।

उपछाया चन्द्र ग्रहण

10 जनवरी, 2020 को उपछाया चंद्र ग्रहण (Penumbral Lunar Eclipse) होगा। एक उपछाया चंद्रग्रहण तब होता है जब चंद्रमा पृथ्वी की आंशिक छाया, या पेनम्ब्रा से होकर गुजरता है। इस प्रकार के ग्रहण के दौरान चंद्रमा थोड़ा गहरा होगा लेकिन पूरी तरह से नहीं। यह ग्रहण पूरे यूरोप, अफ्रीका, एशिया, हिंद महासागर और पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया में दिखाई देगा। चंद्रग्रहण उस खगोलीय स्थिति को कहते है जब चंद्रमा पृथ्वी के ठीक पीछे उसकी प्रच्छाया में आ जाता है। ऐसा तभी हो सकता है जब सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रमा इस क्रम में लगभग एक सीधी रेखा में अवस्थित हों। इस ज्यामितीय प्रतिबंध के कारण चंद्रग्रहण केवल पूर्णिमा को घटित हो सकता है।

इतिहास में विज्ञान

सत्येंद्रनाथ बोस का जन्म 1 जनवरी, 1894 को हुआ था। भारतीय भौतिक विज्ञानी और गणितज्ञ, जिन्होंने अल्बर्ट आइंस्टीन के साथ मिलकर सांख्यिकीय क्वांटम यांत्रिकी का एक सिद्धांत विकसित किया, जिसे अब बोस-आइंस्टीन सांख्यिकी कहा जाता है। क्वांटम सिद्धांत (1924) में

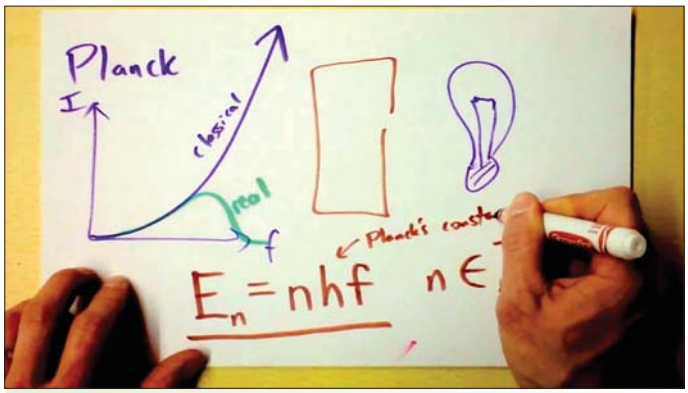

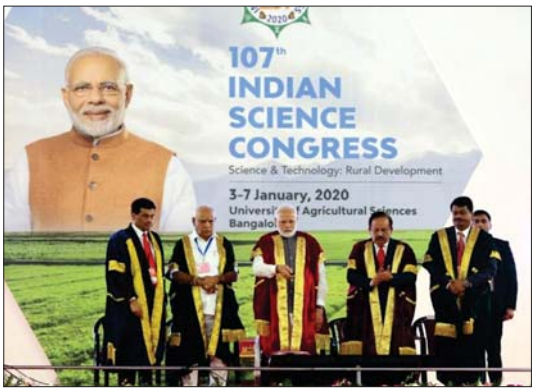

अपने शुरुआती काम में, बोस ने फोटॉन, प्लांक के नियम और लाइट क्वांटम परिकल्पना के क्वांटम आंकड़ों का उपयोग करके प्लैंक ब्लैक-बॉडी रेडिएशन नियम (Planck black-body radiation law) के बारे में लिखा। बोस ने आइंस्टीन को अपने विचार भेजे, जिन्होंने इस तकनीक को अभिन्न स्पिन कणों तक बढ़ाया। डायक ने इन आँकड़ों का पालन करने वाले कणों के लिए बोसॉन नाम दिया। अन्य बातों के अलावा, बोस-आइंस्टीन आंकड़े बताते हैं कि सुपरकंडक्टर्स में एक विद्युत प्रवाह बिना किसी नुकसान के हमेशा के लिए कैसे बह सकता है। जब किसी दृव्य को o°k तक ठंडा किया जाता है तो उसका प्रतिरोध पूर्णतः शून्य प्रतिरोधकता प्रदर्शित करते हैं। उनके इस गुण को अतिचालकता (Superconductivity) कहते हैं। बोस ने एक्स-रे विवर्तन, आयनोस्फीयर और थर्मोल्यूमिनेंस (Thermoluminescence) के विद्युत गुणों पर भी काम किया।

वैज्ञानिक सम्मेलन

3-7 जनवरी, 2020 को भारतीय विज्ञान कांग्रेस का आयोजन कृषि विज्ञान विश्वविद्यालय, बैंगलुरू में किया जाएगा। इस बार का केन्द्रीय विषय है-''विज्ञान प्रौद्योगिकी और ग्रामीण विकास''। इस कार्यक्रम में वैज्ञानिकों द्वारा विज्ञान के विविध विषयों पर शोध पत्र प्रस्तुतिकरण के साथ, विज्ञान संचारक सम्मेलन, राष्ट्रीय किशोर वैज्ञानिक सम्मेलन, महिला विज्ञान कांग्रेस, विज्ञान प्रदर्शनी, किसान विज्ञान कांग्रेस, पूर्व कुलपति सम्मेलन के साथ नोबल पुरस्कार विजेताओं के व्याख्यानों का आयोजन किया जाएगा।

05 जनवरी 2020 को इंटरनेशनल सोसाइटी फॉर साइंस रिसर्च एण्ड डिवेलपमेंट द्वारा पारिस्थितिकी तंत्र, पर्यावरण और पादप विज्ञान पर वैश्विक सम्मेलन का आयोजन होटल कृष्णा सागर, गजियाबाद में किया जाएगा। पारिस्थितिक तंत्र, पर्यावरण और पादप विज्ञान पर वैश्विक सम्मेलन का उद्देश्य वैश्विक प्रतिभागियों के लिए अपने विचारों और अनुभव को साझा करने का अवसर प्रदान करना है ताकि वे अपने साथियों के साथ दुनिया के विभिन्न हिस्सों से जुड़ सकें। इसके अलावा यह सभा प्रतिनिधियों को अनुसंधान या व्यावसायिक संबंध स्थापित करने के साथ-साथ उनके कैरियर मार्ग में भविष्य के सहयोग के लिए अंतर्राष्ट्रीय संबंध खोजने में मदद करेगी।

9-11 जनवरी, 2020 को ''आधुनिक गणितीय विधियों, विज्ञान और प्रौद्योगिकी-2020 में उच्च प्रदर्शन कम्प्यूटिंग पर तीसरा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन इंद्रप्रस्थ इंजीनियरिंग कॉलेज, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश में किया जाएगा। इस सम्मेलन का उद्देश्य बहु-अनुशासनात्मक अनुसंधान का पता लगाना है। यह एल्गोरिदम के विकास और आधुनिक गणितीय विधियों के कार्यान्वयन और वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं और इंजीनियरों के लिए उच्च प्रदर्शन कम्प्यूटिंग पर केंद्रित है। इसका प्रभाव विज्ञान और इंजीनियरिंग विषयों के कई क्षेत्रों में पहले से ही महसूस किया जा रहा है। कम्प्यूटेशनल विज्ञान में वर्तमान शोध के लिए न केवल विज्ञान और इंजीनियरिंग में, बल्कि कंप्यूटिंग की प्रौद्योगिकियों में भी बहु-अनुशासनात्मक ज्ञान की आवश्यकता होती है। यह सम्मेलन अकादमिक शोधकर्ताओं, डेवलपर्स और चिकित्सकों को कम्प्यूटेशनल विज्ञान और इंजीनियरिंग से संबंधित कम्प्यूटेशनल विधियों और विज्ञान और इंजीनियरिंग अनुसंधान के लिए समस्याओं को सुलझाने की तकनीकों के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करने का अवसर प्रदान करता है।

19 जनवरी 2020 को उन्नत कम्प्यूटर विज्ञान और सूचना प्रौद्योगिकी पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन होटल कृष्णा सागर, गाजियाबाद में किया जाएगा। उन्नत कम्प्यूटर विज्ञान और सूचना प्रौद्योगिकी पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन इंस्टीट्यूट फॉर टेक्नालॉजी एण्ड रिसर्च द्वारा आयोजित एक प्रतिष्ठित आयोजन है जो वैश्विक विशेषज्ञों के साथ अपने शोध निष्कर्षों को साझा करने के लिए दुनिया भर के शिक्षाविदों, शोधकर्ताओं, इंजीनियरों, औद्योगिक प्रतिभागियों और नवोदित छात्रों के लिए एक उत्कृष्ट अंतर्राष्ट्रीय मंच प्रदान करने के लिए एक प्रेरणा के साथ आयोजित किया जाता है। ITResearch का मुख्य उद्देश्य वैश्विक प्रतिभागियों के लिए अपने विचारों और अनुभव को अपने साथियों के साथ साझा करने का अवसर प्रदान करना है ताकि वे दुनिया के विभिन्न हिस्सों से जुड़ सकें। इसके अलावा यह सभा प्रतिनिधियों को अनुसंधान या व्यावसायिक संबंध स्थापित करने के साथ-साथ उनके कैरियर मार्ग में भविष्य के सहयोग के लिए अंतर्राष्ट्रीय संबंध खोजने में मदद करती है।

कसरत और चॉकलेट

अमेरिका के वायन स्टेट विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने पाया कि डार्क चॉकलेट की हल्की मात्रा स्वास्थ्य के लिए कसरत जैसी ही लाभदायक हो सकती है। अध्यन में बताया गया कि अनुसंधानकर्ताओं ने कोशिकाओं के ऊर्जा केंद्र माइटोकॉड्रिया का अध्ययन किया और पाया कि चॉकलेट में पाये जाने वाला तत्व इपिकाटेचिन व्यायाम की तरह मांसपेशियों पर असर करता है। चूहों पर परीक्षण करने वाले डॉक्टरों का कहना है, माइटोकॉड्रिया ऊर्जा पैदा करता है जिसका इस्तेमाल कोशिकाएं करती हैं।

ज़्यादा माइटोकॉड्रिया का मतलब ज़्यादा ऊर्जा जिससे ज़्यादा काम किया जा सकता है। अध्ययन में पाया गया कि इपिकाटेचिन दिल और अन्य मांसपेशियों में माइटोकॉड्रिया की संख्या को बढ़ाते है जैसे साइकलिंग और दूसरे कसरतें बढ़ाती हैं। चॉकलेट का नाम सुनते ही मुंह में पानी आ जाता है। लेकिन उससे होने वाले साइड इफेक्ट को देखते हुए आप अपने मन को समझा लेते हैं और चॉकलेट से दूरी बना लेते हैं। आज हर चीज में चॉकलेट का इस्तेमाल किया जाता है। लेकिन ऐसे बहुत से भ्रम हैं जो इसे खाने से रोक देते हैं। अकसर कहा जाता है कि चॉकलेट खाने से वजन बढ़ता है, चेहरे पर दाने निकल आते हैं। लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं है। विशेषज्ञ का मानना है कि अगर चॉकलेट को सीमित मात्रा में खाया जाए तो उससे कोई साइड इफेक्ट नहीं होता।

10 जनवरी को कड़वी-मीठी चॉकलेट दिवस (Bittersweet Chocolate Day) मनाया जाता है। चॉकलेट शब्द मूलतः स्पैनिश भाषा का शब्द है। ज़्यादातर तथ्य बताते हैं कि चॉकलेट शब्द माया और एजटेक सभ्यताओं की देन है जो मध्य अमेरिका से संबंध रखती हैं। एजटेक की भाषा नेहुटल में चॉकलेट शब्द का अर्थ होता है खट्टा या कड़वा। चॉकलेट के बहुत सारे प्रकार हैं, लेकिन बिट्टर्सविट चॉकलेट सर्वलोकप्रिय मानी जाती है, यही कारण है कि एक दिवस बिट्टर्सविट चॉकलेट के नाम किया गया है। चाकलेट कोको के बीजों से निर्मित एक कच्चा या संसाधित भोज्य पदार्थ है। यदि देखा जाए तो कोको के बीजों का स्वाद अत्यन्त कड़वा होता है, इसलिए इसमें स्वाद उत्पन्न करने के लिए इसका किण्वन (Fermentation) करना पड़ता है। चॉकलेट की प्रमुख सामग्री केको या कोको के पेड़ की खोज 2000 वर्ष पूर्व अमेरिका के वर्षा वनों में की गई थी। इस पेड़ की फलियों में जो बीज होते हैं उनसे चॉकलेट बनाई जाते है। सबसे पहले चॉकलेट बनाने वाले लोग मैक्सिको और मध्य अमेरिका के थे।

संयुक्त राज्य अमेरिका में चॉकलेट का सबसे आम प्रकार दूध चॉकलेट है, जो हर्षे और घिरर्डल्ली की चॉकलेट की सबसे लोकप्रिय ब्रांडों का पर्याय बनता है। ये बहुत सारी चीनी और दूध की एक स्वस्थ खुराक से बने होते हैं, जो लोगों को स्वाद और प्यार बाटते हैं। आपको जानकार आश्चर्य होगा की पहले चॉकलेट तीखी हुआ करती थी और फलों के जूस की तरह पी जाती थी। अमेरिका के लोग कोको बीजों को पीसकर उसमें विभिन्न प्रकार के मसाले जैसे चिली वॉटर, वनीला, आदि डालकर एक स्पाइसी और झागदार तीखा पेय पदार्थ बनाते थे। चॉकलेट को मीठा बनाने का श्रेय यूरोप को जाता है जिसने चॉकलेट से मिर्च हटाकर दूध और शक्कर डाली। चॉकलेट को पीने की चीज से खाने की चीज भी यूरोप ने ही बनाया।

जेनेरिक दवाओं का अधिकार

सरकार ने सभी राज्यों को दवा दुकानों पर जेनेरिक दवाएं रखने का आदेश जारी किया था, लेकिन अब ड्रग एंड कॉस्मेटिक एक्ट में बदलाव करने का सरकार मन बना रही है। इसके तहत अब केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय फॉर्मासिस्ट्स को डॉक्टर की तरह मरीज को जेनेरिक दवाएं देने का अधिकार देगा। बताया जा रहा है कि इससे डॉक्टरों पर भी जेनेरिक दवाएं लिखने का दवाब बढ़ेगा। ज्ञातव्य हो कि सरकार लंबे समय से मरीजों को जेनेरिक दवाएं उपलब्ध कराने की पक्षधर है और कई बार राज्यों को पत्र लिख डॉक्टरों से जेनेरिक या सॉल्ट ही पर्ची पर लिखने के निर्देश दिए हैं। बावजूद इसके अभी तक इसमें परिवर्तन देखने को नहीं मिला है। अब मंत्रालय इसे एक्ट के जरिए लागू करने वाला है। आने वाले समय में फॉर्मासिस्ट्स के अधिकारों को बढ़ाया जाएंगे और ड्रग एंड कॉस्मेटिक एक्ट में आने वाले दिनों में यह बदलाव किया जाएगा। इसके तहत अगर किसी मरीज की पर्ची पर ब्रांडेड दवाएं लिखी हैं और उसी सॉल्ट की जेनेरिक दवाएं उपलब्ध हैं तो वह मरीज़ को दवा देने का अधिकार रख सकेगा।

बीते दिनों हुई एक शोध में एलोपैथ की महंगी दवाओं की ही तरह आयुर्वेद, होमियोपैथ और यूनानी पद्धति की दवा में कई विकल्प सुझाए गए, इसके तहत लागत और अधिकतम विक्रय मूल्य में 10 से 20 गुने तक का अंतर पाया गया है। जिसके बाद इन चिकित्सा पद्धतियों की दवा का भी जेनेरिक संस्करण बाजार में उतारा जाएगा। पहले चरण में 80 दवाओं की तैयारी की जा रही है, इसमें वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद (सीएसआईआर) की बीजीआर-34 और डीआरडीओ की ल्यूकोस्किन दवा भी शामिल है। ज्ञात रहे कि बीजीआर-34 मधुमेह और ल्यूकोस्किन दवा सफेद दाग के लिए मरीज़ों को दी जाती है।

जागरूकता हेतु 12 जनवरी को राष्ट्रीय फार्मेसी दिवस मनाया जाता है। चिकित्सा में प्रयुक्त द्रव्यों के ज्ञान को औषधनिर्माण या फार्मेसी

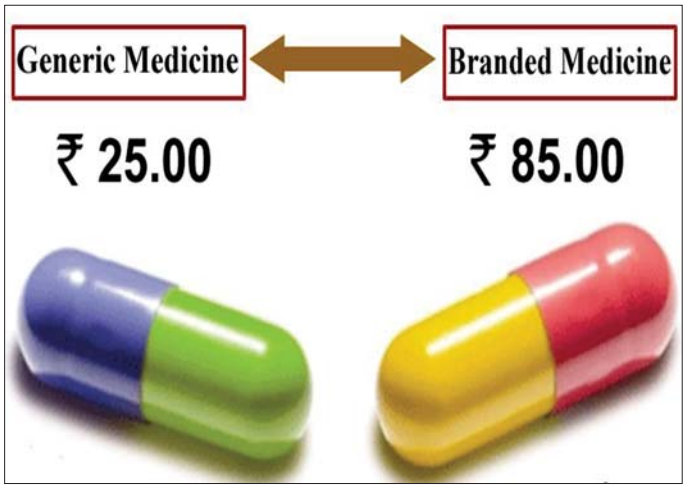

(Pharmacy) कहा जाता हैं। इसके अंतर्गत औषधि का ज्ञान तथा उनका संयोजन ही नहीं वरन् उनकी पहचान, संरक्षण, निर्माण, विश्लेषण तथा प्रमापण भी हैं। नई औषधों का आविष्कार तथा संश्लेषण औषधनिर्माण के प्रमुख कार्य हैं। फार्मेसी उस स्थान को भी कहते हैं जहाँ औषधयोजन तथा विक्रय होता है। जब तक औषधनिर्माण प्रविधियाँ सुगम थीं तब तक औषधनिर्माण विज्ञान चिकित्सा का ही अंग था। परंतु औषधों की संख्या तथा प्रकारों के बढ़ने तथा उनकी निर्माणविधियों के क्रमशः जटिल होते जाने से औषधनिर्माण विज्ञान के अलग विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ी। अध्ययन के लिए औषधनिर्माण विज्ञान दो भागों में बाँटा जा सकता है-सैद्धांतिक औषधनिर्माण (Theoretical pharmacy) तथा क्रियात्मक औषधनिर्माण (Practical pharmacy)। सैद्धांतिक औषधनिर्माण विज्ञान के अंतर्गत भौतिकी, रसायन, गणित और सांख्यिक विश्लेषण तथा वनस्पति विज्ञान, प्राणिशास्त्र, वनौषध परिचय, औषध-प्रभाव-विज्ञान, सूक्ष्म-जीव-विज्ञान तथा जैविकीय प्रमापण का भी ज्ञान आता है। साथ ही, इसमें भाषाज्ञान, औषधनिर्माण संबंधी कानून, औषधनिर्माण, प्राथमिक चिकित्सा और सामाजिक स्वास्थ्य इत्यादि भी सम्मिलित हैं। क्रियात्मक औषधनिर्माण विज्ञान, विज्ञान की वह शाखा है जिसमें औषधनिर्माण के सिद्धांतों को व्यावहारिक रूप में लाने हेतु प्रयुक्त विधियों तथा निर्माण क्रियाओं का ज्ञान आता है। इसके अंतर्गत औषध संयोजन तथा औषधनिर्माण में उपयुक्त होने वाले द्रव्यों का निर्माण भी है।

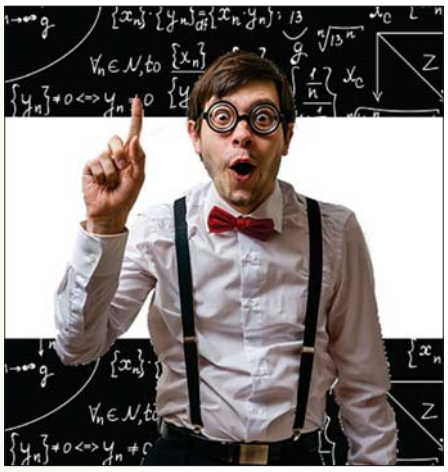

एक गणितीय नियतांत का उत्सव

पाई दिखने में भले ही एक छोटा चिह्न हो लेकिन यह जटिल गणनाओं को बड़ी आसानी से सुलझा सकती है। इसका इस्तेमाल किसी घेरे की परिधि निकालने से लेकर रॉकेट के लॉन्च करने और ब्रह्मांड के आकार पता लगाने में किया गया है। कई लोग पाई को बस एक गणितीय चिह्न के तौर पर ही जानते हैं। जिसे वृत्त के त्रिज्या (Radius) और व्यास (Diameter) का पता लागने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। कई शोधों से पता चला है कि पाई से 13 लाख करोड़ तरह की अलग-अलग संख्याओं की गणना सटीकता से की जा सकती है। पाई का अधिकतर उपयोग ज्यामिति में होता है। अंको को रेडियन में लिखने परंपरा ने इसे त्रिकोणमिति (Trigonometry) का भी अभिन्न अंग बना दिया। अनुमान या संभावना में भी ख़ूब इस्तेमाल होता है। इसका सबसे बड़ा उदहारण बफौन की सुई (Buffon's Needle problem) सवाल है। इसका उपयोग गणित की लगभग हर शाखा में होता है। साथ ही विज्ञान और अभियांत्रिकी में भी इस संख्या का उपयोग होता है।

महान गणितज्ञ आर्यभट्ट ने पाई के सिद्धांत की खोज की थी। पाई को सबसे पहले वैज्ञानिक आर्केमीडिज ने जारी किया था। आर्केमीडिज ने ही सबसे पहले इसका मान बताया था। इसके बाद चीनी गणितज्ञ लू हुई ने पाई का मान और आसान करके दशमलव के सांतवें स्थान तक का मान दिया था, जो 14वीं शताब्दी तक सबसे सटीक माना गया था। लेकिन पाई का अस्तित्व इससे भी काफ़ी पुराना है, कई पुराने दस्तावेज के मुताबिक पाई का जिक्र मिस्र में 1900 साल ईसा पूर्व भी किया गया है। ज्यामिती में किसी वृत्त की परिधि की लंबाई और व्यास की लंबाई के अनुपात को पाई कहा जाता है। प्रत्येक वृत्त में यह अनुपात 3.141 होता है, लेकिन दशमलव के बाद की पूरी संख्या का अब तक आंकलन नहीं किया जा सका है, इसलिए इसे अनंत माना जाता है। आर्यभट्ट ने इसके सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि 100 में चार जोड़ें, आठ से गुणा करें और फिर 62,000 जोड़ें। इस नियम से 20,000 परिधि के एक वृत्त का व्यास ज्ञात किया जा सकता है। अर्थात एक वृत्त का व्यास यदि 20,000 हो, तो उसकी परिधि 62,232 होगी। उल्लेखनीय है कि चार दशमलव स्थानों पर सटीक और सही गणना के बावजूद सत्य के प्रति आग्रही आर्यभट्ट इस मान को विशुद्ध नहीं मानते। बल्कि आसन्न (निकट) मानते थे।

23 जनवरी को राष्ट्रीय पाई दिवस (National Pie Day) मनाया जाता है। पाई दिवस गणितीय नियतांत पाई का वार्षिक उत्सव है। राष्ट्रीय पाई दिवस, 1970 के दशक के मध्य में बोल्डर, कोलोराडो परमाणु अभियंता, ब्रवर और शिक्षक चार्ली पापज़ियन द्वारा अपने जन्मदिन घोषित करने के बाद 23 जनवरी पर मनाया गया। 1986 से राष्ट्रीय पाई दिवस अमेरिकी पाई काउंसिल द्वारा प्रायोजित है।

आवश्यक है डेटा सुरक्षा

आज दुनिया में डिजिटल तकनीक के बढ़ते इस्तेमाल और ऑनलाइन अपराधों की बढ़ती तादाद के मद्देनजर डेटा सुरक्षा के लिए एक ठोस कानून की ज़रूरत महसूस हो रही है और इसी को लेकर ऐसे कानून का मसौदा अगले कुछ दिनों में संसद में पेश होने की उम्मीद है। यदि विधेयक पर दोनों सदनों व राष्ट्रपति की मुहर लग जाती है, तो देश को पहला डेटा सुरक्षा कानून मिल जायेगा। इसमें व्यक्तिगत डेटा को तीन श्रेणियों में बांटते हुए उनके संग्रहण, भंडारण व उपयोग के साथ लोगों की अनुमति लेने और कानून का उल्लंघन करने पर सजा देने की व्यवस्था की गयी है। व्यक्ति को अपने डेटा में सुधार करने, जानकारी लेने और उसे हमेशा के लिए हटा देने का अधिकार होगा। इसके लिए हर कंपनी के लिए डेटा सुरक्षा अधिकारी की नियुक्ति को भी अनिवार्य बना दिया गया है।

सरकार के पास किसी सरकारी विभाग या एजेंसी से जुड़े डेटा को जमा करने से रोकने का अधिकार इस विधेयक में दिया गया है। ऐसे प्रावधानों से डेटा के दुरुपयोग की आशंकाओं पर रोक लगने की आशा है तथा लोग भी आश्वस्त व सशक्त हो सकेंगे। सोशल मीडिया के उपयोगकर्ताओं की पहचान सत्यापित होने से

ऑनलाइन गतिविधियों में स्पष्टता एवं पारदर्शिता भी बढ़ सकेगी। साइबर अपराधों के मुख्य कारण डेटा का असुरक्षित होना है। देखा गया है कि इंटरनेट कंपनियां भी कानूनी प्रावधानों के अभाव में लापरवाह रवैया अपनाती हैं और उनके द्वारा डेटा के बेजा इस्तेमाल के लिए दूसरी कंपनियों को बेचने या देने अनेक गंभीर मामले भी सामने आ चुके हैं। कई आलोचकों का मानना है कि डेटा के स्थानीय स्तर पर रखने की व्यवस्था सूचना के स्वतंत्र आदान-प्रदान पर नकारात्मक असर डाल सकती है, जिससे आर्थिक गतिविधियों को नुकसान हो सकता है।

यह रेखांकित करना भी जरूरी है कि देश के हित, सुरक्षा व अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को प्रभावित करने वाले डेटा को ही भारत से बाहर ले जाने पर पाबंदी का प्रस्ताव है। विधेयक के अनुसार, राष्ट्रीय सुरक्षा व संप्रभुता के आधार पर सरकार इंटरनेट व सोशल मीडिया कंपनियों से किसी भी व्यक्ति के डेटा को हासिल कर सकेगी। सरकारी एजेंसी को छूट देने और व्यक्तिगत डेटा लेने के अधिकारों का प्रयोग सावधानी से होना चाहिए, ताकि लोगों की निजता व स्वतंत्रता पर आंच न आये तथा उनकी वैध गतिविधियों पर नकारात्मक प्रभाव न हो।

आज पूरी दुनिया में साइबर हैकर सक्रिय हैं, प्रतिदिन नए-नए वायरस जन्म ले रहे हैं और हमारे आवश्यक और गोपनीय आकड़ों को नष्ट कर रहे हैं। विश्व में बढ़ते सायबर हमले से डेटा सुरक्षा की आवश्कता बढ़ गई है। डेटा को सुरक्षित रखने का अर्थ है कि डेटा हर प्रकार के संक्रमण से मुक्त और इस प्रकार से नियंत्रित रहे कि केवल अधिकृत उपयोगकर्ता ही इस तक पहुँच सकें। व्यक्तिगत, बैंक विवरण की जानकारी डेटा में समाविष्ट रहती है। जब उपयोगकर्ता के लिए निरूपयोगी डेटा को मिटाया या डिलीट किया जाता है, इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि किसी अनधिकृत व्यक्ति के द्वारा डेटा का पुनर्निर्माण न कर लिया जाए। डेटा को हमेशा के लिए डिलीट करने के लिए, कुछ सॉफ्टवेयर टूल्स उपलब्ध हैं जो डेटा का पुनःनिर्माण होने से रोकते हैं। कुछ ऑपरेटिंग सिस्टम्स् फॉरमैटिंग कमांड को इस प्रकार प्रयोग में लाते हैं कि वह केवल फॉरमैट ही नहीं करता बल्कि उस स्थान पर शून्य को जोड़ देता है। सुरक्षित निपटारे के लिए बहुत सारे अल्गोरिदम्स् उपलब्ध हैं। लायनक्स और युनिक्स सिस्टम में फाइलों को सुरक्षित रखने के लिए एक फाइल डिस्ट्रक्शन कमांड होती है।

डेटा सुरक्षा के लिए पूरी दुनिया में कानून बनाए गए हैं और उनका कड़ाई से पालन हो रहा है। स्विट्जरलैंड के बैंकों में भारत का कालाधन रखने का उदाहरण ही ले लीजिए। अब इस कानून की मदद से काले अकाउंट की पूरी जानकारी भारत सरकार तक पहुंचने का रास्ता साफ होता नजर आ रहा है। स्विट्जरलैंड सरकार ने ऑटोमैटिक सूचना आदान-प्रदान समझौते के लिए भारत के डेटा सुरक्षा और गोपनीयता के कानून को पर्याप्त बताया है। इस समझौते से स्विस बैंक में कालाधन रखने वालों की जानकारी सरकार तक लगातार पहुंच का रास्ता खुल जाएगा। भारत के साथ वित्तीय खातों की जानकारी स्वतः आदान-प्रदान को लेकर आधिकारिक गजेट में प्रकाशित विस्तृत नोटिफिकेशन और फैक्ट शीट में स्विस सरकार ने इसी तरह के समझौते के लिए अन्य वित्तीय केंद्रों के फैसले का भी हवाला दिया है। डेटा को पर्याप्त सुरक्षा देने वाले देशों में भारत को मान्यता देने के लिए स्विट्जरलैंड ने अमेरिकी टैक्स अथॉरिटी, इंटरनल रेवेन्यू सर्विस (आईआरएस) का भी संज्ञान लिया।

28 जनवरी को डेटा गोपनीयता दिवस (Data Privacy Day) मनाया जाता है। आकड़ा या डेटा का अर्थ किसी भी तरह की जानकारी और सूचना होता है। डेटा कुछ भी हो सकता है जैसे फाइल, वीडियो, गीत, फोटो, लिखित वाक्य इत्यादि। मान लीजिए आप कम्प्यूटर पर कोई फाइल तैयार कर रहे हैं उसमें आपने कुछ टाइप किया है फोटो भी उपयोग किया है वीडियो इत्यादि फाइल में आपने लगाया है, यह सभी डेटा कहलाएगा। कुछ डेटा बहुत महत्वपूर्ण होते हैं और उनकी गोपनीयता और सुरक्षा ज़रूरी होती है, इसी उद्देय से डेटा गोपनीयता दिवस मनाया जाता है, जिसमें इसके प्रति जागरूकता बढ़ाने के साथ गोपनीयता और डेटा संरक्षण सर्वोत्तम व्यवस्थों को बढ़ावा देना है। यह दिवस वर्तमान में संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, भारत और 47 यूरोपीय देशों में मनाया जाता है। यह दिवस यूरोप की परिषद द्वारा पहली बार 2007 में यूरोपीय डेटा प्रोटेक्शन दिवस के रूप में आयोजित किया गया था। दो साल बाद, 26 जनवरी, 2009 को, संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रतिनिधि सभा ने 28 जनवरी को राष्ट्रीय डेटा गोपनीयता दिवस घोषित करते हुए, 402-० के मतदान से हाउस रिजॉल्यूशन एचआर 31 पारित किया। 28 जनवरी, 2009 को राष्ट्रीय डेटा गोपनीयता दिवस के रूप में भी मान्यता देने वाले सीनेट में पारित किया गया। डेटा उल्लंघनों के बढ़ते स्तर और गोपनीयता और डेटा सुरक्षा के वैश्विक महत्व के जवाब में, 2009 में ऑनलाइन ट्रस्ट एलायंस (ओटीए) और वैश्विक संगठनों ने डेटा गोपनीयता दिवस को डेटा गोपनीयता और संरक्षण दिवस के रूप में स्वीकार किया था।

research.org@rediffmail.com

हिंदी का वैश्विक विमर्श

डॉ.कृष्ण कुमार मिश्र

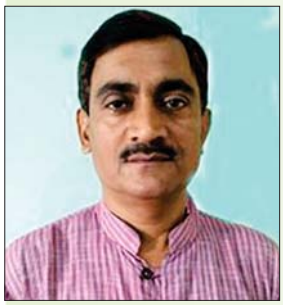

डॉ.कृष्ण कुमार मिश्र ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से रसायन विज्ञान में पीएच-डी. की उपाधि प्राप्त की। आप टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान मुंबई के होमी भाभा विज्ञान केन्द्र में एसोसिएट प्रोफेसर हैं। लोकप्रिय विज्ञान लेखक के रूप में आपकी अपार ख्याति है जोकि हिन्दी में आपके व्यापक लेखन से निर्मित हुई है। आपके 250 से अधिक लेख तथा 22 पुस्तकें प्रकाशित हैं। राजभाषा गौरव पुरस्कार, होमी जहाँगीर भाभा स्वर्ण पुरस्कार, शताब्दी सम्मान, राजभाषा भूषण पुरस्कार, इस्वा सम्मान सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित डॉ.मिश्र मुंबई में निवास करते हैं।

कहा जाता है कि भाषा विचारों तथा भावों की वाहिनी है। यह वह साधन है जिसके द्वारा हम अपने विचारों तथा भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं। भाषा मुख से उच्चारित होने वाले शब्दों और वाक्यों का वह समूह है जिसके द्वारा मन की बात संप्रेषित की जाती है। मौखिक भाषा ध्वनियों का समुच्चय है जिसके जरिये किसी समाज या राष्ट्र के लोग अपने मनोगत भावों तथा विचारों का परस्पर आदान-प्रदान करते हैं। भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची के अनुसार वर्तमान में कुल 22 भाषाओं को स्वीकृति प्रदान की गयी है। ये हैं- असमी, बंगला, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, मलयाली, मराठी, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, तमिल, तेलुगू, उर्दू, सिंधी, बोडो, डोगरी, कोंकणी, मैथिली, मणिपुरी, संथाली तथा नेपाली। ये सभी भारतीय भाषायें हैं। लेकिन 14 सितम्बर 1949 को भारत की संविधान सभा ने खड़ी बोली में देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली भाषा हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया था यानी संघ सरकार के कामकाज की भाषा। उस समय यह तय किया गया था कि हिन्दी का प्रचार-प्रसार, सामासिकता तथा इसकी सर्व स्वीकार्यता के लिए प्रयास किए जाएंगे। सुविधा के लिए अगले 15 वर्षों तक सरकारी कामकाज की भाषा के रूप में अंग्रेजी को कायम रखने का प्रावधान किया गया। कालान्तर में राष्ट्रपति के अध्यादेशानुसार अंग्रेजी को बार-बार विस्तार मिलता गया तथा हिन्दी की अनिवार्यता पर जोर नहीं दिया गया। इससे हिन्दी की अनदेखी होती चली गयी तथा उसे देश में आधिकारिक तौर पर उसका वाजिब स्थान आज तक नहीं मिल सका।

दुनिया भर में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार तथा उसे विश्व पटल पर स्थापित करने के लिए पहला विश्व हिंदी सम्मेलन 10 जनवरी 1975 को नागपुर में आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन में 30 देशों के 122 प्रतिनिधि शामिल हुए थे। उसके बाद से दुनिया के कई देशों में विश्व हिन्दी सम्मेलन मनाया जा चुका है। विश्व हिन्दी सचिवालय की स्थापना मारीशस की राजधानी पोर्ट लुई में की गयी है। वर्ष 2006 से हर साल 10 जनवरी को विश्व हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है। इसका उद्देश्य विश्व में हिन्दी प्रसार तथा विस्तार के लिए जागरूकता पैदा करना तथा हिन्दी को अन्तरराष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रस्तुत करना है। विदेशों में स्थित भारतीय दूतावास इस दिन को विशेष रूप से मनाते हैं। सभी सरकारी कार्यालयों में विभिन्न विषयों पर हिन्दी में व्याख्यान आयोजित किये जाते हैं। भारत सरकार की कोशिश है कि हिन्दी संयुक्त राष्ट्र संध की आधिकारिक भाषा बने।

जनभाषा, राष्ट्रभाषा, विश्वभाषा

महात्मा गांधी ने कहा था कि राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूंगा है। राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र की कल्पना नहीं की जा सकती। आजादी के पहले से लेकर आज तक देश के सभी राष्ट्रनायकों तथा महापुरुषों ने भारत के लिए राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की वकालत की है। लेकिन अफसोस कि हिन्दी को उसका समुचित स्थान आज तक नहीं मिल सका है। कहा जाता है कि हिन्दी भाषी प्रान्तों में भाषायी चेतना का अभाव है। आखिर ऐसे कितने लोग हैं जो हिन्दी को अपनी भाषा मानते में गर्व का अनुभव करते हैं। हिन्दी प्रदेशों के छात्रों के लिए हिन्दी भाषा गौण होती जा रही है। वे उसे सिर्फ इम्तहान के समय पढ़कर पास हो जाना चाहते हैं। उन्हें हिन्दी के लेखकों, कवियों, उनकी कृतियों तथा अवदानों से बहुत ज्यादा लेना-देना नहीं है। इन सबके गहरे सामाजिक, समाजवैज्ञानिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक कारण हैं।

हिन्दी वास्तव में भारत की जनभाषा है। वह एक मजबूत संपर्क भाषा भी है। वह एक बड़े भूभाग की जन-जन की भाषा है चाहे वह किसी भी पंथ, क्षेत्र या अंचल का हो। हिन्दी उत्तर-मध्य भारत के सभी राज्यों में पढ़ी, लिखी, बोली व समझी जाती है। देश के लोग जब अपने प्रांत से दूसरे प्रांतों में जाते हैं तो हिन्दी में ही संवाद करने की कोशिश करते हैं। वास्तव में हिन्दी अघोषित रूप से भारत की राष्ट्रभाषा है। लेकिन जब हिन्दी को औपचारिक तौर पर राष्ट्रभाषा बनाने की बात चलती है तो कुछ विघ्नसंतोषी लोगों को यह बात रास नहीं आती। विंध्य के दक्षिण पठार के कुछ राज्यों से विरोध के स्वर सुनायी पड़ने लगते हैं। उन्हें लगता है कि हिन्दी थोंपी जा रही है तथा इससे उनकी क्षेत्रीय भाषाओं की अस्मिता तथा स्वायत्तता प्रभावित होगी। राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की परिकल्पना इस रूप में ही की गई थी कि अपने-अपने राज्यों में प्रांतीय भाषाएँ ही अपने पूरे अधिकार के साथ अपनी-अपनी भूमिकाएँ निभाएँगी। जो भूमिका हिंदी की हिंदीभाषी राज्यों में होगी, वहीं भूमिका हिंदीतर प्रांतों में उनकी अपनी-अपनी भाषाओं की होगी। राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी अपने ही इतर भाषाओं के साथ उनका तालमेल बनाने में सहायक भर होगी। जहाँ उनका अधिकार होगा, वहाँ तो हिंदी का कोई दखल होगा ही नहीं। लेकिन राजनीतिक स्वार्थ के चलते हिन्दी पर राजनीति की गयी तथा दुष्प्रचार किया गया। वास्तव में हिन्दी किसी भी भाषा के लिए कभी खतरा थी ही नहीं। हाँ, अँग्रेजी ने जरूर भारत की भाषायी अस्मिता पर चोट की है। वह औपनिवेशिक तथा साम्राज्यवादी भाषा रही है। भारत सहित दुनिया की तमाम भाषाओं को वास्तविक खतरा सिर्फ और सिर्फ अंग्रेजी भाषा से है। तमाम कठिनाइयों के बावजूद हिन्दी विश्वमंच पर अपनी पहचान बना रही है। दुनिया के करीब 150 देशों में भारतीय समुदाय के लोग रहते हैं। वे वहां पर परस्पर हिन्दी में ही संवाद करते हैं। अमेरिका में 30 लाख भारतीय हैं। यूनाइडेट किंगडम में 15 लाख हैं। कनाडा में भी 14 लाख हिन्दुस्तानी हैं। सर्वाधिक बड़ी संख्या खाड़ी देशों में भारतीयों की है। अकेले संयुक्त अरब अमीरात में 26 लाख हिन्दुस्तानी रहते हैं। यह संख्या वहां की कुल जनसंख्या की 30 प्रतिशत है। इसी वर्ष अबूधाबी सरकार ने

18वीं सदी के अंत तक आते-आते भारत में अँग्रेजी राज को कायम रखने के लिए बड़ी संख्या में कर्मचारियों और बाबुओं की आवश्यकता महसूस की गई। अधिकारियों के स्तर पर तो अँग्रेजों की ही नियुक्ति होती थी, मगर निचले स्तर पर इतनी बड़ी संख्या में अँग्रेजों की नियुक्ति संभव नहीं थी। इस मजबूरी में स्थानीय लोगों को अँग्रेजी में शिक्षित करने के बारे में सोचा गया।

हिन्दी को वहाँ की न्यायालयीन भाषा के तौर पर स्वीकृति दी है। पहले वहां अरबी तथा अंग्रेजी भाषाएं अदालत की भाषाएँ थीं। अप्रवासी भारतीय समुदाय ने हिन्दी को विदेशों में खूब फैलाया तथा प्रचारित किया है।

भाषायी स्वराज का प्रश्न

महामना पंडित मदनमोहन मालवीय जी ने महात्मा गांधी को एक सम्मेलन के लिए भेजे गए पत्र में कहा था कि "भाषा माता के समान है। माता पर हमारा जो प्रेम होना चाहिए, वह हम लोगों में नहीं है। हमें अब अपनी मातृभाषा की और उपेक्षा करके उसकी हत्या नहीं करना चाहिए।" महात्मा गांधी भारत राष्ट्र की राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को स्थापित करने के प्रबल समर्थक थे और इस रूप में अँग्रेजी से उनका जबर्दस्त विरोध भी था। वे कभी नहीं चाहते थे कि देश को हम अँग्रेजों से तो आजाद करा लें, लेकिन अँग्रेजी के आगे नतमस्तक होते रहें। और इसका कारण एकदम सीधा था। अँग्रेजी प्रभु वर्ग की भाषा थी और आज भी वह अपने इस अभिजात्य चरित्र को बनाए हुए है। महात्मा गाँधी जी ने सन् 1914 में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने पर पुरुषोत्तम दास टंडन को एक पत्र में लिखा था, "मेरे लिए हिन्दी का प्रश्न तो स्वराज का प्रश्न है।" इसके बाद गाँधी जी ने दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार सभा के द्वारा हिन्दीतर भाषी प्रांतों में राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार-प्रसार कराया। गांधी जी समझते थे कि पूरे देश की जनता को अँग्रेजी सिखा पाना न तो संभव होगा और न उचित। ऐसे में देश में कभी भी असली स्वराज नहीं आ सकता। सिर्फ शासक वर्ग का रंग बदलेगा, मानसिकता नहीं। और यह बात आज के आजाद भारत की एक कड़वी सच्चाई भी है।

इस सच्चाई को आज 72 साल के आजाद भारत में गांधी जी के इस कथन से परखा जा सकता है- "अगर स्वराज अंग्रेजी बोलने वाले भारतीयों का और उन्हीं के लिए होने वाला है तो बेशक अँग्रेजी ही राष्ट्रभाषा होगी। लेकिन अगर स्वराज देश के करोड़ों भूखों, निरक्षर भाई-बहनों और दलितों तथा वंचितों का हो, और इन सबके लिए होने वाला हो, तो हिंदी ही एक मात्र राष्ट्रभाषा हो सकती है।" विश्व के प्रायः सभी देशों ने अपने ही देश की भाषा को शिक्षा-दीक्षा के लिए स्वीकार किया। यूरोप के स्विट्जरलैंड सरीखे छोटे से देश ने भी अपनी भाषा को अपने यहाँ शिक्षा का माध्यम बनाया है।

वास्तव में भारत में अंग्रेजी को बढ़ावा देने के पीछे ईस्ट इण्डिया कंपनी का राज रहा है। 18वीं सदी के अंत तक आते-आते भारत में अँग्रेजी राज को कायम रखने के लिए बड़ी संख्या में कर्मचारियों और बाबुओं की आवश्यकता महसूस की गई। अधिकारियों के स्तर पर तो अँग्रेजों की ही नियुक्ति होती थी, मगर निचले स्तर पर इतनी बड़ी संख्या में अँग्रेजों की नियुक्ति संभव नहीं थी। इस मजबूरी में स्थानीय लोगों को अँग्रेजी में शिक्षित करने के बारे में सोचा गया। लार्ड मैकाले इस विचार का अगुआ था जिसने भारतीयों को सदा के लिए मानसिक गुलाम बनाना चाहा। वह भारतीयों के बीच से ही एक ऐसी नस्ल पैदा करना चाहता था जो तन से हिन्दुस्तानी होगी लेकिन मन से अंग्रेजी। उसका मकसद भारत में ऐसी शिक्षा-व्यवस्था कायम करना था जिससे भारतीय जीवन-शैली और लोक-संस्कृति का पश्चिमीकरण हो जाए। लार्ड मैकाले की नीति बहुत ही स्पष्ट थी। उसकी सोच थी कि अँग्रेजी शिक्षा का प्रचार-प्रसार कर भारतीयों को मात्र उतनी ही शिक्षा दी जाए, जिससे कि वे अच्छे

नौकर साबित हो सकें। वह चाहता था कि पढ़ा-लिखा भारतीय विचारों से बिल्कुल पश्चिम परस्त हो जाए। भारतीय केवल खून और रंग की दृष्टि से हिंदुस्तानी हों! किंतु अपनी रुचि, भाषा, भावों और विचारों की दृष्टि से अँग्रेज हो।

अंग्रेजी का मोहजाल

आज हमारे देश का शिक्षित वर्ग अँग्रेजी के मोहजाल में फँस गया है। उसे अपनी ही भाषा से असंतोष हो गया है। उसे लगता है कि अंग्रेजी सत्ता की भाषा है। इसलिए यदि ओहदा प्राप्त करना है तो अंग्रेजी सीखना जरूरी है। वे अंग्रेजी को एक सीढ़ी के रूप में देखते हैं जिसके जरिये वे उच्च पायदान पर पहुंच सकते हैं। जिस दिन देश आजाद हुआ उसी दिन गांधी जी ने कहा था कि- अगर मेरे हाथों में तानाशाही सत्ता हो तो मैं आज से ही विदेशी माध्यम (अँग्रेजी) से दी जाने वाली शिक्षा बंद करा दूँ और सारे शिक्षकों और प्रोफेसरों से यह माध्यम तुरंत बदलवा दूँ। अँग्रेजी को ज्ञान की भाषा समझना राष्ट्रीय विपत्ति है तथा इतिहास में अँग्रेजी को विदेशी शासन की बुराइयों में से सबसे बड़ी बुराई माना जाएगा। इसलिए जितनी जल्दी हो, भारतीय मानस को इस मोहजाल से मुक्त होना चाहिए।

देश भर में अब बच्चों को शुरुआती कक्षा से अंग्रेजी पढ़ाए जाने पर जोर है। दुनिया के सभी शिक्षाशास्त्रियों ने बुनियादी शिक्षा के लिए मातृभाषा की वकालत की है। लेकिन हमारे देश में अंग्रेजी मोह के चलते यह सर्वमान्य तथ्य भी नकारा जा रहा है। ऐसे में देश के बच्चे अपनी भाषा कब पढ़ेंगे। आज की उच्च शिक्षा प्रायः अंग्रेजी में दी जा रही है। व्यावसायिक पाठ्यक्रम अंग्रेजी में ही हैं। विज्ञान, तकनीकी,

अभियांत्रिकी, चिकित्सा, पराचिकित्सा, प्रबन्धन, वित्त, वाणिज्य, सभी के पाठ्यक्रमों का माध्यम अंग्रेजी है। भाषाओं, समाज विज्ञान तथा मानविकी के विषयों को छोड़ दें तो सभी विषयों के शोध तथा विकास का काम अंग्रेजी में हो रहा है। एक तरह से यह औपनिवेशिक बोझ को लगातार ढोये जाते रहने जैसा है। आज गली, मुहल्लों, कस्बों तथा गांवों में जगह-जगह अंग्रेजी माध्यम के कान्वेन्ट स्कूल कुकुरमुत्ते की तरह उगते जा रहे हैं। कुछ साल पहले राष्ट्रीय ज्ञान आयोग ने देश भर में पहली कक्षा से अंग्रेजी पढ़ाये जाने की सिफारिश की थी। जब शिक्षा का माध्यम ही हिन्दी नहीं रहेगी तो उसका विकास तथा प्रसार कैसे होगा? एक भ्रांति जो प्रायः अंग्रेजीदां लोगों द्वारा जोर-शोर से फैलायी जाती रही है, वह यह है कि हिन्दी अभी इतनी समर्थ नहीं है कि उसमें उच्च शिक्षा दी जा सके। सच्चाई यह है कि आज हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य की कमी नहीं है। तकनीकी शब्दों के लिए शब्दावली आयोग द्वारा तैयार कोश विज्ञान शिक्षा के लिए पर्याप्त है। हिन्दी में ढेरों शब्दकोश, समान्तर कोश, पारिभाषिक कोश तैयार हो चुके हैं। हिन्दी की शब्द-संपदा 9 लाख के आंकड़े को कभी की पार कर चुकी है। जरूरत सिर्फ इच्छा शक्ति की है। यदि दृढ़ संकल्प एवं निष्ठा हो तो विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की समूची शिक्षा हिन्दी माध्यम से संभव है।

भाषागत आंकड़े- एक दृष्टि

वर्ष 2001 की राष्ट्रीय जनगणना में यद्यपि 122 भारतीय भाषाओं का ही उल्लेख किया गया है। किंतु बड़ौदा स्थित पीपुल्स लिग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया के हालिया सर्वेक्षण के मुताबिक वर्तमान में भारत में कुल 780 भाषाएँ बोली जाती हैं। इस संस्था का नतीजा बताता है कि पिछले पचास वर्षों में देश में करीब 250 भाषाएं लुप्त हो चुकी हैं। यानी औसतन हर साल 5 भाषाएं। यह चौंकाने वाला आंकड़ा है। ऐसा इसलिए क्योंकि यह औपनिवेशिक काल की बात नहीं है बल्कि आजादी के बाद की धटना है जब केन्द्र तथा प्रांतों में चुनी हुई सरकारें हैं जिन पर देश की भाषा, संस्कृति के संरक्षण तथा संवर्धन का दायित्व रहता है तथा हर मंत्रिमंडल में इसके लिए बाकायदा विभाग तथा मंत्री होते हैं। इतनी भारतीय भाषाओं का लुप्त होना एक अपूरणीय क्षति है। किसी भाषा के लुप्त होने से उसके साथ जुड़ी हजारों साल की संस्कृति तथा जीवन-दर्शन सदा के लिए समाप्त हो जाता है। भारत में सर्वाधिक भाषायी विविधता जनजातीय क्षेत्रों में है। उनके संरक्षण तथा प्रोत्साहन की जरूरत है। आज दुनिया में कुल 7105 भाषाएँ बोली जाती हैं।

हिन्दी भाषा- विश्व दृष्टि

हिन्दी वैश्विक भाषा है। विश्व मंच के अनुरूप इसमें साहित्य, कला तथा संस्कृति के कार्यक्रम हो रहे हैं। तमाम व्यक्ति तथा संस्थायें हैं जो

सारिणी-1 विश्व में बोली जाने वाली कुल भाषाएँ एवं क्षेत्रवार विवरण

क्षेत्र	जीवित भाषा		बोलने वालों की संख्या			
	संख्या	प्रतिशत	कुल	प्रतिशत	औसत	माध्यिका
अफ्रीका	2,146	30.2	78,91,38,977	12.7	367,726	27,000
अमेरिका	1,060	14.9	5,11,09,910	0.8	48,217	1,170
एशिया	2,304	32.4	374,29,96,641	60.0	1,624,565	12,000
यूरोप	284	4.0	1,646,624,761	26.4	5,797,975	61,150
प्रशांत	1,311	18.5	6,551,278	0.1	4,997	950
कुल	7,105	100.0	6,236,421,567	100.0	877,751	7,000

सारिणी-2 भारत में दस बड़ी भाषाएँ

श्रेणी	भाषा	2001 की जनगणना (कुल जनसंख्या 1,02,86,10,328)		1991 की जनगणना (कुल जनसंख्या 83,85,83,988)	
		बोलने वालों की संख्या	प्रतिशत	बोलने वालों की संख्या	प्रतिशत
1.	हिन्दी	42,20,48,642	41.03%	32,95,18,087	39.29%
2.	बंगला	8,33,69,769	8.11%	6,95,95,738	8.30%
3.	तेलुगु	7,40,02,856	7.19%	6,60,17,615	7.87%
4.	मराठी	7,19,36,894	6.99%	6,24,81,681	7.45%
5.	तमिल	6,07,93,814	5.91%	5,30,06,368	6.32%
6.	उर्दू	5,15,36,111	5.01%	4,34,06,932	5.18%
7.	गुजराती	4,60,91,617	4.48%	4,06,73,814	4.85%
8.	कन्नड़	3,79,24,011	3.69%	3,27,53,676	3.91%
9.	मलयालम	3,30,66,392	3.21%	3,03,77,176	3.62%
10.	उड़िया	3,30,17,446	3.21%	2,80,61,313	3.35%

हिन्दी को विश्व फलक पर स्थापित करने में अतुलनीय कार्य कर रहे हैं। इस क्रम में 'विश्व रंग' का उल्लेख करना समीचीन होगा। साहित्य तथा कला का यह विश्वस्तरीय सम्मेलन 4 से 10 नवम्बर 2019 को हिन्दी के हृदय प्रदेश, मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल में आयोजित किया गया। इसे प्रणेता हैं सुविख्यात साहित्यकार, संस्कृतिकर्मी तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय के कुलाधिपति माननीय संतोष चौबे। उनके स्तुत्य प्रयासों तथा संकल्पों से यह कार्यक्रम अपनी सफलता को प्राप्त हुआ। इसमें दुनिया के 30 से ज्यादा देशों के कुल 500 लब्धप्रतिष्ठित साहित्यकारों तथा रंगकर्मियों ने भाग लिया। 'विश्व रंग' में नोबेल, बुकर, साहित्य अकादमी, पद्म पुरस्कारों से सम्मानित शताधिक विभूतियों की उपस्थिति ने कार्यक्रम को अद्भुत भव्यता प्रदान की। देश के प्रिंट तथा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ने इसे बखूबी स्थान दिया तथा इसकी महत्ता को भी रेखांकित किया। वैसे तो देश में कई साहित्यिक महोत्सव यानी लिटफेस्ट आयोजित होते हैं लेकिन उनमें प्रायः आंग्लभाषा का बाहुल्य तथा वर्चस्व दीखता है। लेकिन विश्व रंग ने अपनी छटा से साबित कर दिया कि हिन्दी पूर्णतः समर्थ है तथा दुनिया की भाषाओं से किसी भी मायने में कमतर नहीं है।

बाजारवाद के चलते इलेक्ट्रानिक तथा प्रिंट माध्यमों में हिन्दी की उपस्थिति बेशक बढ़ी है। पत्रकारिता, संचार माध्यमों, व्यावसायिक उद्यमों, विज्ञापनों, चैनलों, वेबसाइटों, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से हिन्दी जुड़ने की कोशिश कर रही है। इन सारे माध्यमों को हिन्दी की जरूरत भी है क्योंकि वे हिन्दी के जरिये ही खरीददारों और उपभोक्ताओं के पास पहुंच सकते हैं। एक अनुमान के मुताबिक आज भी इस देश में बमुश्किल पांच से सात प्रतिशत लोग अंग्रेजी का जीवन जीते हैं। इसलिए बाजार से जुड़े ये सारे माध्यम हिन्दी का उपयोग कर रहे हैं। हिन्दी बाजार की भाषा बने इसमें कोई हर्ज नहीं है। लेकिन चिंता इस बात की है कि यह बाजारू बनती जा रही है। इसकी स्वाभाविक विशिष्टता लुप्त हो रही है। अंग्रेजी के धालमेल के साथ इसे विरूपित किया जा रहा है। हिन्दी फिल्मों के नाम अब अंग्रेजी में रखे जा रहे हैं। हिन्दी फिल्मों के सितारे फिल्म समारोहों में अंग्रेजी में बोलते नजर आते हैं। हिन्दी में वे सिर्फ वे रटे-रटाये संवाद बोलते हैं,

या फिर बोल सकते हैं। विज्ञापन की दुनिया में हिन्दी बड़े पैमाने पर रोमन लिपि में नगरों, महानगरों की सड़कों, गली-चौराहों पर देखी जा सकती है। एक जमाने में अंग्रेजों ने पूरी कोशिश की थी कि हिन्दी की लिपि देवनागरी की जगह रोमन हो। लेकिन भाषाप्रेमी भारतीयों के प्रखर विरोध के चलते वे उसे लागू न कर सके। लेकिन जो चीज फिरंगी नहीं कर सके, वह हमारे बीच के ही अंग्रेजीपरस्त आज बखूबी कर रहे हैं। इन विज्ञापनों के माध्यमों से आज की पीढ़ी जो हिन्दी देख, सुन तथा सीख रही है, वह न तो पूरी तरह हिन्दी है, और न ही अंग्रेजी। वास्तव में यह दौर भाषायी अपसंस्कृति का दौर है।

निष्कर्ष

कुछ आलोचक कहते सुने जाते हैं कि हिन्दी साहित्यिक भाषा बनकर रह गई है। हिन्दी में मौलिक चिंतन, ज्ञान-विज्ञान से संबंधित नवाचार, मौलिक और नवीन चिंतन का काम बहुत कम हो रहा है। समाज विज्ञान, मानविकी से लेकर प्रकृति विज्ञान तक में किताबों और लेखों का अनुवाद ही दृष्टिगोचर होता है। हिन्दी में आज विज्ञान की पत्रिकाएं बहुत कम हैं। समाजविज्ञान की पत्रिकाएं भी कम ही हैं। ऐसी स्थिति में हिन्दी उच्च शिक्षा का माध्यम नहीं बन पा रही है। हमारे पड़ोसी दो देशों चीन और जापान से यह सबक सीखा जा सकता है कि अपनी भाषा में भी विज्ञान तथा तकनीकी के सभी काम बखूबी किए जा सकते हैं। इसलिए हमारे देश में जब तक ज्ञान-विज्ञान का काम अंग्रेजी में होता रहेगा, हिन्दी तब तक विज्ञान तथा तकनीकी शिक्षा की भाषा नहीं बन सकेगी। आज अंग्रेजी के सामने सभी भारतीय भाषाएं संघर्ष कर रही हैं। इसमें जो कमजोर साबित होंगी उनका दम जल्दी घुट जाएगा तथा वे मुकाबले से बाहर हो जाएंगी। जो दमखम वाली होंगी वे ज्यादा देर तक मुकाबला कर सकेंगी। तमाम भारतीय भाषाओं के लिए यह एक संक्रमण काल है। हिन्दी के पक्ष में एक बात जाती है वह है हिन्दी बोलने वालों की विशाल आबादी तथा हिन्दी प्रदेशों का विस्तृत भूखंड। इस संक्रमण काल में आज हमारा किया गया कार्य तथा योगदान ही हिन्दी को ताकत प्रदान करेगा तथा उसकी भविष्य की दशा और दिशा तय करेगा।

vigyan.lekhak@gmail.com

❑❑❑